रोड़
इतिहास
की
झलक
राज पाल सिंह

रोड़ इतिहास की झलक
(Glimpses of Ror History)
डॉ० राज पाल सिंह

Publishers :
PAL PUBLICATIONS
9-12, M.L.N. College Road.
Sant Pura, Yamuna Nagar

Edition : 1987
Price : Rs. 25-00 only

Printed at :
VEENU PRINTERS
M.L.N. College Road
Yamuna Nager, Phone : 23300

अनन्त प्रोत्साहक एवम् प्रेरणास्रोत

दादी माँ

की

अर्चनीय मधुर स्मृति

को

श्रद्धा एवं सत्कार सहित

समर्पित

To Know Anything Thoroughly,
Nothing Accessible Must be Excluded.

— Sir Oliver Lodge

झलक-क्रम

परिशिष्ट :

आपके उद्गार

मुझे डॉ० राज पाल सिह द्वारा रचित 'रोड़ इतिहास की झलक' नामक पुस्तक की रूप रेखा पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें सच्चाई पर आधारित ऐतिहासिक जानकारी दी गई है......

—शिव राम वर्मा
पूर्व मन्त्री, हरियाणा सरकार

I am glad to know that Dr. Raj Pal Singh has undertaken research on History of Rors and has laboured hard on the topic. I congratulate Dr. Singh and hope that he will fill up the gaps in Ror History with further research.

—Ishwar Singh, M.L.A.
Dy. Chairman, Planning Board, Haryana

......मेरा पूर्ण विश्वास है कि 'झलक' ग्राम्य-बिरादरी में जागृति उत्पन्न कर परस्पर सहयोग एवं सद्भावना बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी......

—मास्टर केहर सिह, छिछड़ाना

....इस प्रयास के लिये इतिहासकार, माननीय डॉ० राज पाल सिह निश्चय ही साधुवाद एवम् मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा के पात्र हैं.

—तिलक राम, दिवालहेड़ी (यू०पी०)

....मैं सभी से, विशेष तौर पर रोड़ जाति के नौजवानों से, अनुरोध करता हूँ कि वे इतिहास के इस महान् कार्य को और आगे बढ़ायें...

— भीम सिह, प्रधान, रोड़ महा सभा

Foreword

In the present volume, the author—Dr. Raj Pal Singh—has made an attempt to introduce the readers to the genuine need of the systematic study of the origin and functioning of Indian Caste System with special reference to Rors. With the help of reports of the Archaeological Survey Department of India, the author has established that the Rors once ruled over Kheragarh and Khangar-Ror near modern Agra in about the first century of the Christian era. Again, having tapped the historical data available in the repository at Soram (Muzaffarnagar U.P.), the author has proved that in the Medieval Times, different castes, including Rors therein, played a very significant role in socio-political miliue of the country under the auspices of Haryana Sarva-khap Panchayat.

It can be said with confidence that the principal merit of this first analytical attempt towards the systematic history of Rors, the author has skilfully pieced together all accessible and available matter and has intentionally left the question of the exact historical role and position of Rors, more or less, open for further research. With this end in his mind, he has given detailed references in the foot-notes as well as six annexures included in the body of the text.

It is hoped the readers in general and research scholars in particular will greatly benefit from this book.

Mukand Lal National College
Yamuna Nagar-135001

Dr. K. L. Johar
Principal
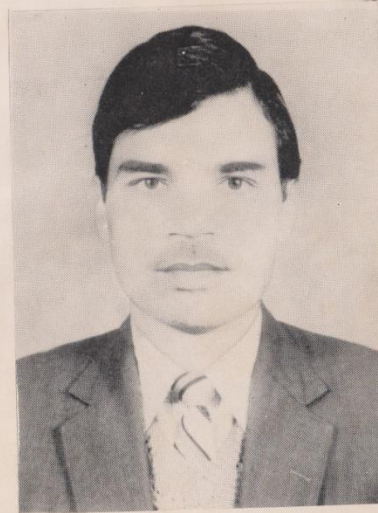
लेखक : डॉ० राज पाल सिंह

गौरव की बात

रोड़ जाति अपने अतीत के विषय में लम्बे समय से एक प्रामाणिक पुस्तक की आवश्यकता महसूस करती रही है। यह अति हर्ष एवं गौरव की बात है कि रोड़ जाति के विषय में खोजपूर्ण अध्ययन के आधार पर हमारे मित्र, डॉ० राज पाल सिंह, ने इस जाति के लुप्त और बिखरे इतिहास को लिपिबद्ध करने का साहसिक कदम उठाया है। प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का प्रचुरता से प्रयोग करके डॉ० सिंह ने मिथ्या कथा-कहानियों का खण्डन किया है। इनके अध्यवसाय, गहन अध्ययन एवं मौलिक चिन्तन की छाप पुस्तक के हर पृष्ठ पर अंकित है।

'रोड़ इतिहास की झलक' रोड़ जाति के अतीत् की उत्तमोत्तम पहचान प्रस्तुत करती है। मुझे विश्वास है कि दूसरे सज्जन अपनी नई खोजों से इस पहचान को अधिक स्पष्टता एवं सम्पूर्णता प्रदान करेंगे और डॉ सिंह भी इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना पूरा सहयोग देते रहेंगे।

मेहर सिंह खैंन्ची
प्राध्यापक
महाराजा अग्रसैन कॉलेज
जगाधरी-135003

गौरव की बात

रोड़ जाति अपने अतीत के विषय में लम्बे समय से एक प्रामाणिक पुस्तक की आवश्यकता महसूस करती रही है। यह अति हर्ष एवं गौरव की बात है कि रोड़ जाति के विषय में खोजपूर्ण अध्ययन के आधार पर हमारे मित्र, डॉ० राज पाल सिंह, ने इस जाति के लुप्त और बिखरे इतिहास को लिपिबद्ध करने का साहसिक कदम उठाया है। प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का प्रचुरता से प्रयोग करके डॉ० सिंह ने मिथ्या कथा-कहानियों का खण्डन किया है। इनके अध्यवसाय, गहन अध्ययन एवं मौलिक चिन्तन की छाप पुस्तक के हर पृष्ठ पर अंकित है।

'रोड़ इतिहास की झलक' रोड़ जाति के अतीत् की उत्तमोत्तम पहचान प्रस्तुत करती है। मुझे विश्वास है कि दूसरे सज्जन अपनी नई खोजों से इस पहचान को अधिक स्पष्टता एवं सम्पूर्णता प्रदान करेंगे और डॉ सिंह भी इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना पूरा सहयोग देते रहेंगे।

मेहर सिंह खैंन्ची
प्राध्यापक
महाराजा अग्रसैन कॉलेज
जगाधरी-135003

पुस्तक लेखन एवं मुद्रण का कार्य मेरे माता-पिता तथा सह-धर्मिणी गायत्री सिह एवं बच्चों द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण सहयोग से ही संभव हो सका है। लेकिन इनका धन्यवाद करना मात्र औपचारिकता ही होगी।

वीनू प्रिन्टर्स यमुना नगर के व्यवस्थापक, श्री सतेन्द्र पाल बवेजा एवं कर्मचारियों का मैं आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने परिश्रम एवं लग्न से सीमित समय में 'झलक' का मुद्रण किया है।

अन्ततः, रोड़ इतिहास के विषय में इस प्रथम सीमित प्रयास में जो भी कमियां, विसंगतियां, त्रुटियां तथा अशुद्धियां रह गई हैं उनके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ । आशा है, सुहृदय- विद्वान्-- सज्जन क्षमा करेंगे । प्रस्तुत विषय से सम्बन्ध किसी प्रकार की प्रामाणिक जानकारी, सामग्री या सुझाव के लिये पाठकों की सम्मति का हार्दिक स्वागत है।

10—मुकन्द लाल नैशनल कॉलेज
टीचर्स होस्टल,
यमुना नगर—135001

डॉ॰ राज पाल सिह

एक

रोड़ इतिहास की आवश्यकता एवं साधन

आर्यवर्त के दीर्घ-कालीन इतिहास में वर्ण-व्यवस्था ने सामाजिक व्यवस्था का सुचारू रुप से संचालन किया है । इसने अनेक शताब्दीयों तक राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों की खलबली का दृढ़ता से मुकाबिला किया और जब तक यह व्यवस्था कर्म पर आधारित रही, प्रत्येक भारतवासी ने उसे समाज द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्वों का पालन करना सहर्ष स्वीकार किया । परन्तु जब व्यवसाय/कर्म के स्थान पर जन्म के आधार पर व्यक्तियों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र माना जाने लगा और वर्णों का स्थान अनेकानेक जातियों ने ले लिया तो राष्ट्र को इस से बड़ी क्षति होनी स्वाभाविक थी।

लेकिन आज विभिन्न जातियों द्वारा अतीत में की गई भूलों या विध्वंसकारी कार्यवाहियों की अपेक्षा उन विभूतियों को याद करने की ज्यादा आवश्यकता है, जिन्होंने आश्रयहीनों, दीन दुखियों और समाज एवं देश के लिए संघर्ष किया और हंसते-हंसते आत्म बलिदान किया है। यह भी मानना पड़ेगा कि जो व्यक्ति, वंश. जातियां और संस्थाएं दूसरों को हानि पहुंचाये बिना अपने उत्थान के लिये प्रयत्न करती हैं, वे देश-हित में बहुत बड़ा काम कर रही हैं। अतः यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का सही स्वरुप विभिन्न जातियों के अतीत में परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध, उनका समाज तथा देश-सेवा में सामूहिक योगदान इत्यादि तथ्यों का ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ समुचित ढंग से प्रस्तुतीकरण हो। जिससे 'सर्व-धर्म-सम्भव' की भांति सर्व-जाति-सम्भव की भावना देश के लिए हितकारी सिद्ध हो सके।

भारतवर्ष में किसी जाति विशेष में जन्म के संयोग से ही व्यक्ति का समस्त सामाजिक एव व्यक्तिगत जीवन, उसका खान-पान, रहन-सहन, पहनावा एवं वैवाहिक सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। अतः यह अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जाति, कुल एवं गोत्र इत्यादि के विषय में निश्चित जानकारी होनी चाहिए, जिसे वह आवश्यकता पड़ने पर निस्संकोच होकर प्रकट कर सके। परन्तु तत्सम्बन्धित क्रमबद्ध एवं वैध ऐतिहासिक सामग्री की न्यूनता के कारण लोक-कथाओं, लोक-गाथाओं एवं अन्य सामाजिक अवधारणाओं के प्रचलन के कारण विभिन्न जातियों के उदभव एवं विकास के बारे में परस्पर विरोधी मत प्रचलित हो गये हैं। यही समस्या रोड़ों के अतीत पर दृष्टिपात करने से सामने आती है। अतः रोड़ जाति के अतीत और उद्‌भव के विषय में विचार करना आवश्यक है।

रोड़ जाति का व्यवस्थित इतिहास लिखने के लिए हम अनेक साधनों से सामग्री प्राप्त कर रहे हैं और हमारे इस प्रयत्न

के परिणाम. काफी उत्साहवर्धक हैं। किन्तु यहां हम 'झलक' में प्रयुक्त इतिहास-साधनों का ही वर्णन कर रहे हैं। 'झलक' में प्रयुक्त सामग्री मोटे तौर से दो भागों में बांटी जा सकती है। (1) साहित्यिक, और (2) पुरातत्व सम्बन्धी। पहले हम साहित्यिक सामग्री पर विचार करेंगे।

पुराणों, ऐतिहासिक महाकाव्यों और 'रासो' इत्यादि द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री का प्राचीन इतिहास, जानने में पर्याप्त प्रयोग किया जाता है। 'पुराणों' से प्राचीन राज कुलों का इतिवृत्तात्मक वंशानुचरित मिलता है और 'रामायण' तथा 'महाभारत' में भारत की तात्कालिक धार्मिक और सामाजिक स्थितियों का सन्तोष-प्रद संग्रह है। इसी प्रकार चन्द्र बरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित घटनाओं और चरित्रों से देश की तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों पर ऐतिहासिक सामग्री मिली है। इस सारी सामग्री का संग्रह श्री देश राज तथा श्री सुलतान सिंह ग्राम बड़वा, जिला जयपुर ने 1979 में कर दिया था। साथ ही उन्होंने रोड़ों से सम्बद्ध भाट-विवरण को भी लिपिबद्ध करने में यथेष्ट योगदान दिया। इस सारी सामग्री के प्रयोग के आधार पर प्राचीन रोड़ शासकों का तिथि क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें तिथियां नहीं दी गई हैं।

भाट-वर्णन और 'रासो' साहित्य से प्राप्त सामग्री का प्रयोग करते समय डा० दशरथ शर्मा तथा डा० वी० एस० भार्गव की इस चेतावनी को हमेशा ध्यान में रखा गया है कि इस प्रकार की सामग्री का "ऐतिहासिक महत्व सीमित है।" और इनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं और रोमांचकारी कहानियों को अलग किए बिना 'Sober History' नहीं लिखी जा सकती। इतना होने पर भी इस वृतान्त में काम की सामग्री है, जिसने 'अन्धकूप में आलोक-रश्मि' का काम किया है।

प्राचीन रोड़ शासकों से सम्बन्धित कुछ सामग्री इस क्षेत्र में प्रचलित लोक साहित्य तथा लोकगीत. लोक गाथा, स्वांग अथवा सांग इत्यादि से भी संग्रहित की गई है। परन्तु आम तौर पर यह पाया गया है कि इस सामग्री का आधार भाट-वर्णन तथा भाटों के आख्यान ही हैं, जिससे इसका इतिहास-सृजन में उपयोग सीमित हो गया है। एक प्राचीन रोड़ शासक से सम्बद्ध राजस्थानी भाषा में सम्वत् 1822 विक्रमी (1764 ई०) के एक अज्ञात लेखक का लेख 'हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशील' नामक पुस्तक में 'बीजा और सौरठ की बात' के रूप में मिलता है। इसके पश्चात तो इस 'बात' के अनेक लोक रंजनकारी स्वरुप-शाखे, भजन, गीत और स्वांग प्रचलित हो गए हैं, जिनसे यह अन्दाज लगाना भी कठिन है कि इनमें कहां इतिहास आरम्भ और कहां समाप्त होता है।

भारतवर्ष की जनगणना रिपोर्ट्स, गजेटियर्स तथा डेन्जील इब्बैटसन तथा विलियम क्रुक की पुस्तकों में रोड़ों की परम्परागत साहसिक घटनाओं, उपाख्यानों, लोक-वार्ताओं, जन-विश्वासों तथा समाज में प्रचलित रूढ़ियों के वर्णन के रूप में काफी मौलिक सामग्री दी गई है। यद्यपि इसका प्राचीन एवं मध्यकालीन रोड़ इतिहास के लिए तो महत्व नगण्य ही है, तथापि आधुनिक काल के इतिहास-लेखन में इन स्रोतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मध्यकालीन रोड़ इतिहास की 'झलक' का निर्माण करने के लिये मुख्यतः हरियाणा सर्वखाप पंचायत, सौरम जिला मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश) के अभिलेखागार में सुरक्षित प्राचीन रिकार्डस में से सामग्री का संग्रह किया गया है। इस संग्राहलय में अन्य छुट-पुट सामग्री के अतिरिक्त इसके वर्तमान सचिव के शब्दों में, "सम्वत् 1249-50 विक्रमी से लेकर सम्वत्

1914 विक्रमी तक इस संगठन की जिस-जिस कुल या जाति के भाईयों ने सेवा की है, उनके प्रमाण हमारे पास हैं। रोड़ जाति के पोंईयो के मुस्लिम काल में किये गए कई युद्धों में नाम मिलते हैं।" वास्तव में, मोहम्मद गौरी से लेकर उत्तर-मुगलकालीन शासकों तक के समय में रोड़ों की गतिविधियों का प्रामाणिक वर्णन वहीं से प्राप्त सामग्री पर निर्भर करता है।

पुरातत्व-सम्बन्धो सामग्री :

भारतीय इतिहास के निर्माण में पुरातत्व-सामग्री का प्रयोग बड़ा उपयोगी रहा है। आगरा क्षेत्र में जहां रोड़ों ने प्राचीन काल में खेड़ा गढ़, तिसमान गढ़, कसौन्दी गढ़, खंगण रोड़ (कगरोल) तथा बादल गढ़ के स्थानों पर भवनों, महलों-किलों इत्यादि की स्थापना की थी, उनके भग्नावशेष रोड़ इतिहास के निर्माण में कम महत्वपूर्ण नहीं प्रमाणित हुए हैं। ए० सी० एल० कालाईल तथा ए० कनिंघम नामक पुराविदों ने सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन रोड़ शासित इस क्षेत्र के भग्नावशेषों में उनके अतीत का गौरव दबा पड़ा है। अतीत से सम्बद्ध सामग्री की न्यूनता को कुछ हद तक आर्कैल्योजिकल सर्वे रिर्पोट, 1871—72, खण्ड चार कम करती है। पुरातत्व से नई बातें जानकर अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से प्राप्त तथ्यों की पुष्टि तथा संदिग्ध सूत्रों से प्राप्त सामग्री के आधार पर बनाए गये चिरकाल से चले आ रहे मतों का खण्डन करना सम्भव हो सका है।

प्रस्तुत 'झलक' तैयार करते समय रोड़ों की समकालीन-सम कक्ष जातियों से सम्बध्द ग्रन्थों में दर्ज सामग्री से यथेष्ट सहायता ली गई है। साथ ही, क्षेत्रिय-इतिहास के अध्ययन पर आधारित पुस्तकों, जिनका यथोचित स्थान पर उल्लेख कर

दिया गया है, का रोड़ जाति की गतिविधियों को समझने के लिये तथा उन्हें व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने के लिये प्रयोग किया गया है।

उपरोक्त साधनों से प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित करते समय हमें विभिन्न बिन्दुओं पर प्रचलित (कई बार परस्पर विरोधी) विचारों को अपने सीमित ज्ञान के आधार पर स्वीकार या अस्वीकार करना पड़ा है। इसी प्रकार रोड़ जाति के इतिहास-पात्रों के गुण-दोषों को पूर्णतः इतिहास की कसौटी पर कसना भी सम्भव नहीं हो पाया है। फिर भी आगामी पृष्ठों पर रोड़ इतिहास के विभिन्न प्रकरणों जैसे वंश / जाति का नामकरण, खटकानगरी-बादली की स्थापना व उनकी भौगोलिक पहचान, सौरठ-हड़ने का किस्सा, कुतुबुद्दीन ऐबक के साथ रोड़ों का 'युद्ध और उसके परिणाम', रोड़ों का हरियाणा में आगमन और उनका मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास में स्थान इत्यादि का जहां तहां सुक्ष्म आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तथापि अपने विचार प्रस्तुत करते समय यह ध्यान रखा गया है कि प्राप्त की गई सामग्री का प्रयोग किसी बिजगणीतिय सूत्र (Formula) या cut and dried theory के रूप में प्रस्तुत न हो।

वस्तुतः इस पुस्तक में व्यक्त विचारों की यह क्षमता रखने का प्रयास किया गया है कि वे भविष्य में नई खोज पर आधारित बारीकी से रोड़ इतिहास के अध्ययन की प्रवृति को जागृत कर सकें तथा स्वयं नये निष्कर्षों के मार्ग में रुकावट प्रस्तुत न करे। इस प्रयत्न की उपयोगिता तो भविष्य ही बतलाएगा, किन्तु हम इस विश्वास के साथ आगे बढ़ने का साहस कर रहे हैं कि यह 'झलक' भविष्य में खोज करने वालों के लिये एक सिढ़ी का कार्य करेगी।

दो

रोड़ों की उत्पत्ति

भारत वर्ष के इतिहास में हरियाणा का गौरवमय स्थान है। जहां इस क्षेत्र में सरस्वती और दृष्टवती जैसी पावन नदियों के किनारों पर ऋषि-मुनियों ने वैदिक ग्रन्थों की रचना की और वैदिक संस्कृति का धर्मात्माओं ने दूर-दूर तक प्रचार किया है, वहीं अपने अधिकारों की प्राप्ति एवं रक्षा के लिये प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक हरियाणावासियों को निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है। यही कारण हैं कि अम्बाला, कुरुक्षेत्र, तरावड़ी, करनाल और पानीपत इत्यादि नगरों में कितने ही ऐतिहासिक युद्ध लड़े गए, जिन्होंने देश के भाग्य को अनेक बार नया मोड़ दिया है। इसी क्षेत्र में एक वीर पराक्रमी जाति, जो रोड़ नाम से विख्यात है, निवास करती है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त इस जाति के कुछ गांव उत्तर प्रदेश में भी हैं। लेकिन प्राचीन

भारतीय इतिहास की भांति रोड़ जाति से सम्बन्धित इतिहास सामग्री की क्रमबध्दता का अभाव होने के कारण इस जाति के उदभव एवं अतीत के विषय में आज भी स्थिति यह बनी हुई है कि आप ग्याहरवीं शताब्दी में भारत की यात्रा पर आये अरब इतिहासकार, अल्बेरूनी के इस कथन से सहमत होंगे कि "हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम के प्रति उदासीन हैं । तिथि के अनुक्रम के सम्बन्ध में वे अत्यन्त लापरवाह हैं। जब-जब उनसे कोई ऐसी बात पूछी जाती है जिसका वे[1] उत्तर नहीं दे पाते तब-तब वे कहानियां गढ़ने लगते हैं। वस्तुतः रोड़ जाति के उदभव बारे में अनेक मत प्रचलित हैं।

बिजनौर क्षेत्र में निवास करने वाले रोड़ जाति के लोगों का कहना है कि उनकी उत्पति की घटना इस प्रकार से हुई :
जब रामचन्द्र अयोध्या के शासक ने अपनी अर्द्धांग्नि सीता से सम्बन्ध-विच्छेद किए तो वह गर्भवती थी। वह जंगल में बालमीकि ऋषि की निगरानी में रहने लगी। जहां उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम लव रखा गया। एक दिन जब वह घर से बाहर जाने लगी तो बच्चे को ऋषि के पास छोड़ गई। बच्चा अपनी मां के पीछे चला गया। जब ऋषि को बच्चा वहां न मिला, तो उसने समझा कि कोई जंगली पशु उसे उठा ले गया। उसकी मृत्यु हो गई होगी। ऋषि ने "कुशा" घास से एक बच्चे का निर्माण कर दिया। जब सीता वापिस आई और दूसरा बच्चा देखा तो उसने ऋषि से इस बच्चे के विषय में पूछा। ऋषि ने कहा कि यह "रोड़ा फोड़ा [तुच्छ-वस्तु] भी तुम्हारा पुत्र है" अतः उन्हें आजकल रोड़ कहा जाता है ?[2]

उपरोक्त मत में "घास" से ऋषि द्वारा मानव बच्चे की उत्पति की जो बात कही गई है, वह स्पष्टतः तर्क संगत नहीं है। हां, अपने अतीत के विषय में अनभिज्ञ होने के कारण

बिजनौर क्षेत्र के रोड़ों ने उपरोक्त कहानी की सत्यता पर विश्वास करते हुए उस जिले के जनगणना अधिकारी के सामने अपनी उत्पत्ति का उपरोक्त कारण बता कर सूर्यवंशी होने का गर्व अवश्य महसूस किया होगा।

आज से 30-40 वर्ष पूर्व श्री बलजीत सिंह, गांव रावली, जिला बिजनौर ने "रोहड़ जाति का इतिहास" नामक आठ पृष्ठों का एक पम्फलैट प्रकाशित करवाया था, जिसमें इतिहास के विषय में तो एक भी पंक्ति नहीं लिखी गई। हां, रोड़ शब्द की खोज में इसकी उत्पत्ति सम्बन्धित एक नयी कहानी अवश्य जोड़ दी [देखिये पृष्ठ 7-8]। उनके अनुसार रोर, रोड़, रोढ़, रोहढ़, रोहड़, अरोर इत्यादि शब्द प्राकृत भाषा के रोहढ़ शब्द से बने हैं तथा संस्कृत और इसके विकृत शब्दों के अनुसार यह "रोहढ़" शब्द भी "रोहित" शब्द का विकृत रूप ही दिखाई पड़ता है। विद्वान लेखक का मत है कि इस "रोहढ़" जाति का आदि-स्रोत पौराणिक इतिहास में वर्णित सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र राजा रोहित से प्रारम्भ हुआ है। अपने मत की पुष्टि में इनका कहना है कि "रोहित" का अर्थ लाल "लोहित" है। आज भी "रोहढ़" जाति के लोग अधिकांश लाल गेहुवें रंग के ही देखे गए हैं। शब्दार्थ के अनुसार "रोहढ़" उसको कहते हैं जो बड़ा शान्त, गम्भीर और गहरा हो तथा विवश हो जाने पर बड़ा जिद्दी, हठी और कुहराम मचा देने वाला हो। कहने का अभिप्राय यह है कि "रोर, अरोर, अरौर, रोहढ़ कुछ भी कहो इनका अर्थ मूल में एक है, वह राजा रोहित में पूर्णतया घटता था, जिनके वंशज यह रोढ़ हैं।"

"सहारनपुर क्षेत्र के रोड़ों का दावा है कि उनकी उत्पत्ति कैथल में महाभारत युद्ध के दौरान श्री कृष्ण से हुई।[3]" इस मत के अनुयायी अपने आप को चन्द्रवंशी [यदुवंशी] सिद्ध करने

का प्रयास तो करते स्पष्ट नजर आते हैं, परन्तु इस मत की पुष्टि करने के लिए प्रामाणिक इतिहास सामग्री के अभाव के कारण इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस बात से इतना जरूर सिद्ध हो जाता है कि इस क्षेत्र के निवासियों के पूर्वज कभी कैथल क्षेत्र में रहते थे, जो बाद में सहारनपुर जिले में आ बसे।

भाटों की बहियों-पोथियों में दर्ज सामग्री के अनुसार इन्द्रप्रस्थ के प्रसिद्ध राजा कुरू के समकालीन "खटकानगरी" के राजा रूरू ने परशराम के समय में जात पलटी करी और वह रोरवंशी कहलवाया अब लोग इस भाषा में इसे रोड़ कहते हैं।"

यही बात इब्बेट्सन[4] को पंजाब की जातियों के विषय में जानकारी प्राप्त करते समय बतलायी गई थी कि रोड़ों के पूर्वज राजपूत थे जिन्होंने परसराम की क्रोधाग्नि से बचने के लिए अपनी जाति और [i.e. Aur meaning another] बताई जो कालान्तर में और से बिगड़कर रोड़ जाति हो गई।

परशुराम से रोड़ों की उत्पत्ति बताने वाला यह मत परस्पर विरोधी बातों का प्रतिपादक है। प्रथमतः राजा रूरू को राजा कुरू का समकालीन बतलाया गया है जिसके कारण वह निश्चित रुप से परशुराम के बहुत बाद के समय में हुए। क्योंकि रामायण के अनुसार परशुराम अयोध्या के राजा रामचन्द्र के समकालीन थे। उनका क्षत्रियों के साथ लम्बे समय से चले आ रहे संघर्ष का लगभग महाभारत काल तक चलना सम्भव नहीं हो सकता। फिर "और" शब्द का रोड़ शब्द में परिवर्तित होना भी भाषा-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध लगता है।

द्वितीय, वास्तव में परशुराम के डर से "जात-पलटी" जैसी कोई घटना घटित होना असम्भव है। क्योंकि भारत की

विभिन्न जातियों के उदभव एवं विकास के विषय में ऐतिहासिक सामग्री के अभाव का लाभ उठाते हुए भाटों ने लगभग विश्वसनीय लगने वाली कहानियां गढ़ डाली हैं। क्षत्रिय जातियों जाट, अरोड़ा, तथा रोड़ इत्यादि के उद्भव के लिये परशुराम के कुल्हाड़े का भय बतलाया गया है। जिसकी ऐतिहासिकता केवल इतनी ही मानी जा सकती है कि अतीत में क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों में कड़ा मुकाबला हुआ[5] होगा जिसका पौराणिक ग्रन्थों में काव्यात्मक वर्णन किया गया है। अतः परशुराम के डर से रूरू द्वारा जाति परिवर्तित करने की घटना को ऐतिहासिक तथ्य के रुप में नहीं माना जा सकता।

"राजपूत" शब्द जातिसूचक न होकर पद सूचक के रुप में ग्रहण किया जाना चाहिए, क्योंकि भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में शासक वर्ग के लिये इस शब्द का प्रयोग किसी भेदभाव बिना किया जाता था। राजपूत शब्द का जाति सूचक शब्द के रुप में प्रचलन भारत पर मुस्लिम आक्रमण आरम्भ होने के पश्चात ही हुआ लगता है जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार परमात्मा सरन ने भी लिखा है[6]। इसके विपरीत रोड़ वंश के शासकों से सम्बद्ध निश्चित पुरातात्विक सामग्री[7] लगभग प्रथम ईस्वी शताब्दी से मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। जिसका स्पष्ट अर्थ यह लिया जा सकता है कि रोड़ जाति प्राचीन शासक वंश से सम्बद्ध है और इसका उद्गम राजपूत जाति से नहीं हुआ।

रोड़ जाति में प्रचलित विभिन्न गौत्रों के लोग, भाटों द्वारा बताई गई यही बात अपने गोत्र एवं जाति की उत्पत्ति के विषय में दोहराते हैं कि उनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई[8]। परन्तु यह कथन रोड़ जाति की उत्पत्ति का कारण न होकर इस जाति की वृद्धि एवं विकास का कारण माना जा सकता है। रोड़ समाज आज पहले से विशाल हो गया है। जिस प्रकार से बंगाल

की खाड़ी के मुहाने सुन्दरवन से या फिर गंगा से मिलने वाली अनेक छोटी-बड़ी नदियों से गंगा की विशालता तो समझी जा सकती है, उत्पत्ति नहीं, इसकी उत्पत्ति समझने के लिये हिमालय में स्थित गंगोत्री नामक स्थान पर जाना अनिवार्य होगा, उसी प्रकार गोत्रों की भूल-भुलैया को छोड़कर रोड़ वंश की उत्पत्ति का असली तत्व ढूंढना अति आवश्यक है।

कनिंघम का इस विषय में यह कथन ज्यादा तर्क संगत प्रतीत होता है कि प्राचीन क्षत्रिय वर्ण के एक भाग को ही रोड़ कहा जाता है[9]।

विभिन्न रोड़ गोत्रों का प्रारम्भ किसी-न-किसी पूर्वज के नाम से सम्बद्ध है। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि क्षत्रिय वंशी किसी व्यक्ति के नाम पर ही इस जाति का उद्भव हुआ है।

रोड़ जाति के वंश—वृक्ष को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि रोड़ अगर रूरू [क्रम संख्या 28] से नहीं तो राजा धज [क्रम संख्या 60] के पौत्र रूड़क से अवश्य ही वंश के रूप में स्थापित होने आरम्भ हो गये थे[10]। क्योंकि पुरातात्विक खोज के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि इस वंश के शासक खंगण [क्रम संख्या 69] द्वारा नवस्थापित दुर्ग का नाम खंगण—रोड़ था जिसके अवशेष आज भी कगरोल में देखे जा सकते हैं[11]। रूरू या रूड़क के समय में (प्राचीन काल में) रोड़ वंश का आरम्भ होना यह मत स्थापित नहीं करता कि वर्तमान में जो रोड़ जाति है, उसमें सिर्फ अतीत के रोड़ राजवंशियों के वंशज ही हैं। सत्य तो यह है कि इस वंश में आरम्भ से ही विवाह से सम्बन्धित नियम ज्यादा कठोर नहीं थे। कालान्तर में रोड़ किसी भेदभाव के बिना लगभग समकक्ष जातियों में शादियां

करते रहे हैं। जिसका वर्णन भाटों के ग्रन्थों में भी मिलता है। चिरकाल से चले आ रहे इस क्रम के कारण अन्य वर्णों/जातियों के लोग भी रोड़ जाति में समाविष्ट होते चले गये और इस प्रकार वर्तमान रोड़ जाति का स्वरुप निर्धारित हुआ है।

1 सचाउ, अल्बेरूनी का भारत, खण्ड 2, पृ० 10
2 विलियम क्रुक, ट्राईब्ज एण्ड कास्ट्स आफ दि नार्थ-वैस्टर्न प्रोविंसिज एण्ड अवध, [कलकत्ता, 1896] पृष्ठ 243-246.
3 उपरोक्त
4 डेन्जिल इब्बेट्सन, रेसिज, कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स आफ दि पिपल ऑफ पंजाब। [देहली, 1981 संस्करण]।, पृष्ठ 178-180.
5 "दि स्टडी आफ इण्डियन ट्रेडिसन"—इण्डिका—1953—सिलवर जुबिली इसू तथा "जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री" नं० 143 में परशुराम विषयक आख्यानों की ऐतिहासिकता की जांच की गई है।
6 परमात्मा सरन, मिडिवियल इण्डियन हिस्ट्री।
7 आरकेल्योजिकल सर्वे रिपोर्ट—वर्ष 1871-72, भाग 4, पृष्ठ 209-211.
8 दृष्टव्य, भाट रिकार्डस।
9 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 210 (पाद टिप्पणी)।
10 दृष्टव्य, भाट-विवरण।
11 दृष्टव्य, अध्याय तीन।

तीन

रोड़ों के प्राचीन सत्ता केन्द्र

रोड़ जाति की चर्चा आरम्भ करते ही उसके उद्गम स्थान उसके प्राचीनतम् घर की खोज अनायास आरम्भ हो जाती है। उसे पूरा करने के लिये हम पुनः क्रम आरम्भ कर रहे हैं, भाटों के परम्परागत वर्णन से[1], जिसे रोड़ जाति में इतिहास के रुप में मान्यता प्राप्त रही है। तदानुसार राजा रूरू के पूवजों ने जिस 'खटकानगरी' पर राज्य किया, वह गुजरात में कच्छ-भुज की तरफ अहमदाबाद वाली रेलवे लाईन पर पालनपुर के निकट है। रोड़ शासक मुकनदेव (क्र० सं० 48) ने खटकानगरी से उठकर बादली को आबाद किया। वे इन दोनों मुकाम, खटकानगरी तथा बादली, में रहते हुए शासन कार्य करते थे। राजा धज (क्र० सं० 60) ने रोड़ी-शंकर की स्थापना की, ऐसी भी भाटों की मान्यता है।

साधारण स्थिति में दुर्दान, मुकनदेव व धज द्वारा स्थापित नगरों की भौगोलिक खोज का विशेष महत्व नहीं होता, परन्तु प्राचीन रोड़-वंश की ऐतिहासिक गुत्थी को सुलझाने के लिये इस जाति में प्रचलित भाटों की उपरोक्त अनैतिहासिक अवधारणा को युक्तिपूर्ण ढंग से समझना अनिवार्य है। उपर्युक्त वर्णन में भाटों ने खटकानगरी, बादली व रोड़ी शंकर की जो पहचान बतलाई है, अगर इसे मान लिया जाए तो देहली के निकट से लेकर सम्पूर्ण गुजरात तथा सिन्ध तक के क्षेत्र पर या तो मुकनदेव व उसके वंशजों का शासन होना चाहिए या उनके पास ऐसे तीव्रगति से कार्य करने वाले यातायात व संचार के साधन होने चाहिएं, जिनसे वे इन दूरस्थ स्थानों पर एक साथ प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रण कर प्रशासन कर सकें। अतः उपरोक्त 'खटकानगरी' 'बादली' और 'रोड़ी शंकर' एक ही व्यक्ति या शासक वंश के आधीन होना ज्यादा तर्क-संगत नहीं लगते। तदैव इस विषय में हम पुरातत्त्व विभाग द्वारा संग्रहित सामग्री के आधार पर प्रचलित इस परम्परा तथा पुरातात्त्विक सामग्री के साक्ष्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करेंगे। यहां यह बता देना अप्रासांगिक नहीं होगा कि रोड़ वंशी शासकों–तिस्मान (क्रम सं० 58), धज (क्रम सं० 60) तथा खंगण (क्रम सं० 69) से सम्बन्धित महलों, भवनों, किलों इत्यादि के खण्डहर, सिक्के एवं मूर्तियों आधुनिक आगरा शहर के निकटवर्ती स्थानों से उपरोक्त सर्वेक्षण कार्य के समय प्राप्त हुए थे। इस क्षेत्र में तत्सम्बन्धी सामग्री मिलने तथा प्राचीन रोड़ राजाओं के इन्द्र-प्रस्थ, मथुरा तथा विराट नगर (बैरठ) के शासकों से निकटस्थ सम्बन्ध[3] होने से तो यही संकेत मिलता है कि रोड़ शासक, जो निश्चित रुप से एक क्षेत्रिय शक्ति के रुप में शासक/अधिशासक थे, आगरा के आस-पास के क्षेत्र में, आबाद रहे होंगे। तदैव 'खटकानगरी', 'बादली' तथा 'रोड़ी शंकर'

नामक स्थानों की खोज भी इसी क्षेत्र में की जानी चाहिए, जो शायद उसी नाम से या कुछ अन्य नाम से प्राचीन काल में जाने जाते रहे होंगे।

सर्व-प्रथम् हम 'खटकानगरी' की पहचान का प्रश्न लेते हैं। सर्वेक्षण रिपोंट के अनुसार खेड़ागढ़ तथा तिस्सु गढ़ नामक प्राचीन किलों के खण्डहर आगरा से 24 मील तथा आगरा-ग्वालियर, सड़क से आठ मील पश्चिम में बान-गंगा नदी के किनारे, जहां इस समय (1871) खेड़ागढ़ नामक गांव बसा हुआ है, मिलते हैं। यह गांव एक अत्यन्त प्राचीन खेड़े पर बसा हुआ है। इस गांव के दोनों ओर प्राचीन भवनों के खण्डहरों के घोतक टीले मौजूद हैं। एक टीला गांव के उत्तर में 300-400 फुट की दूरी पर है। दूसरा टीला, जिसे 'तिसु-टीला' कहा जाता है, इस गांब से 500 फुट पूर्व में है। यहां से समय-समय पर प्राचीन कला-कृतियां तथा मूर्तियां प्राप्त होती रही हैं। खेड़ागढ़ में किले के जो खण्डहर मिलते हैं उनके नीचे उससे भी प्राचीन काल में बने किले के खण्डहर मिलते हैं।

उपरोक्त रिपोंट से आभासित होता है कि खेड़ागढ़ प्राचीन काल से ही किसी राजनैतिक सत्ताधारी वंश का केन्द्र-स्थल रहा है; जिसने यहां पर अनेक भवन तथा किले स्थापित किये, जो कालान्तर में नष्ट होने चले गये एवं नये रूप में फिर बना दिये गये। अन्ततः इस क्रम की इति वहां के टीलों के नीचे दबे खण्डहरों के रुप में मिलती है। खेड़ागढ़ के प्राचीन खण्डहरों की खुदाई से, इस स्थान के प्राचीन शासकों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलने की पूरी सम्भावना है. हम उपरोक्त स्थान पर स्थित 'तिसु-टीले' से इस स्थान के मूक इतिहास का अनुमान लगा सकते हैं। तिसु अवश्य ही इस स्थान से सम्बद्ध कोई

महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा होगा जिसके पूर्वजों द्वारा स्थापित प्राचीन महलों एवं भवनों-किलों के खण्डहर समीपस्थ स्थान से मिलते हैं। हमारे विचार से 'तिसु-टिला' रोड़ वंश के शासक तिसमान (क्रम सं॰ 58) के नाम पर होना चाहिये, जिसके पूर्वज दुरदान ने खेड़ागढ़ की स्थापना की और दुरदान (क्रम संख्या 2) से लेकर बीच की पीढ़ियों ने यहाँ निवास किया होगा। अतएव खेड़ागढ़ ही वह स्थान होना चाहिए जिसे भाटों के परम्परागत विवरण में 'खटकानगरी' का नाम दिया गया है। हमारे इस अनुमान की पुष्टि अगले पृष्ठों में वर्णित रोड़ शासकों के इसी क्षेत्र में बसाए गये अन्य स्थानों से भी हो जाती है।

यद्यपि भाटों द्वारा प्रतिपादित वंश-वृक्ष के अनुसार राजा खंगण (क्रम सं॰ 69) का वर्णन हमें काल क्रमानुसार बाद में लेना चाहिए। परन्तु खेड़ागढ़ से निकटस्थ स्थान पर खंगण द्वारा एक किले की स्थापना का वर्णन जो हमें उपरोक्त सर्वेक्षण रिपोंट से ज्ञात हुआ है[5], यहीं देना ज्यादा यथोचित होगा।

पहले रिपोंट का सार उद्धृत है: कगरोल खेड़ागढ़ से तीन कोस इस ओर तथा आगरा से 18 मील दूर स्थित है। यह एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। वर्तमान गांव एक प्राचीन टीले पर, जो एक पुराने किले के मलबे का बना है, बसा हुआ है। कगरोल गांव के पश्चिमी भाग के नीचे एक बहुत ही मजबूत तथा मोटी दीवार मौजूद है। यह दीवार लाल रंग के बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़ों की बनी हुई है। इनमें से कुछ टुकड़ों पर बहुत ही सुन्दर खुदाई का कार्य किया हुआ है। आज (1871) भी जहां कगरोल गांव बसा हुआ है उसके टीले के नीचे इस दीवार का काफी हिस्सा दबा हुआ है। लेकिन, दीवार का दूसरा भाग जो टिले से बाहर आगे की तरफ बढ़ा हुआ था वह लगभग पूर्णतया स्थानीय खेतिहरों द्वारा खोद लिया गया। इस दीबार को वे इस

हद तक नष्ट करते रहे कि अन्त में इससे मिलने वाले पदार्थों पर अधिकार के विषय में उनमें झगड़ा हो गया। अब इस स्थान पर (टिले के नीचे दबी दीवार को छोड़कर) स्वतन्त्र रूप से कोई दीवार शेष नहीं है।

"इस क्षेत्र के निवासियों से पूछताछ के पश्चात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि········· इस स्थान के नीचे दबे हुए किले की स्थापना राजा रोड़ ने की थी। जिसे राजा खंगण का पुत्र बतलाया जाता है।"

इस किले की स्थापना का कारण बतलाते हुए लोगों ने सब टीम को बतलाया : इस क्षेत्र में यह लोक-गाथा प्रचलित है कि इस स्थान पर एक सफेद कव्वा या काग (white crow) बैठा देखा गया था जिसे समृद्धि का शुभ-सूचक मानते हुए राजा रोड़ ने इस स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया तथा इसी कारण इसे कागारोड़ या कगरोड़ कहा जाने लगा जो अब कगरोड़ से बदलकर कगरोल के रूप में विकृत हो गया है। उपरोक्त विषय में कारलाईल महोदय का कहना है कि :

मेरे विचार से किले के नाम का उद्भव स्पष्टतः राजा खंगड़ तथा उसके पुत्र रोड़ के नामों से मिलकर, जिससे खंगड़-रोड़ बनता है, हुआ जो समय गुजरने पर खंगड़-रोल या कागा-रोल/कगरोल में विकृत हो गया।

इस सर्वेक्षण रिर्पोट का मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि उपरोक्त लोक-गाथा में उल्लेखित राजा खंगड़ रोड़, रोड़ वंशी शासक खंगण (क्रम संख्या 69) था और यह स्थान स्वयं उसके नाम तथा जाति के नाम का घोतक है, उसके पुत्र का नाम इसमें मिश्रित नहीं है। इनके अतिरिक्त शायद स्थान की

स्थापना का कारण उपरोल्लेखित 'सफेद काग' न होकर उनकी प्राचीन राजधानी पर आया कोई संकट रहा हो, जिसका प्रतिकात्मक रूप में वर्णन वहां से प्राप्त इस कलात्मक आकृति से हो जाता है।

खंगणरोड़/कगरोल से सफेद पत्थर/संगमरमर की बनी हुई सांड की एक ऐसी आकृति प्राप्त हुई है जिसमें सांड बहुत ही भयग्रस्त (आक्रान्त) हो आगे कूद रहा है, उसकी दोनों अगली टांगें आगे को उठी हुई हैं और पीछे से उस पर चीते, भेड़िये या शेर द्वारा आक्रमण किया गया है जिसने उसकी पूंछ अपने मुंह में पकड़ ली है। सांड की अगली टांगों के थोड़ा पीछे एक आदमी की टांग तथा पैर दिखलाई देते हैं लेकिन उसकी आकृति का ऊपरी भाग (मनुष्य का धड़) टूटा हुआ है।[6]

रोड़ बंश के इतिहास में राजा धज (क्र० स० 60 का अत्यधिक महत्व है। इनका नाम रोड़ जाति के लोगों में आम रूप से प्रचलित है तथा अनेक स्वांग-गानों का विषय बना हुआ है जिसे आज भी उत्तरी भारत में बड़े चाव से सुना जाता है। राजा धज, जो पूर्व-वर्णित राजा तिसमान के पौत्र थे, ने सत्ता के मद में सौरठ को हर कर अपने तामसी गुणों का परिचय दिया। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं जब शासकों ने 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' की कहावत को चरितार्थ किया है। राजा धज द्वारा सौरठ का हरना भी रोड़ वंशी शासक वर्ग के लिये भारी कठिनाई का घोतक सिद्ध हुआ।[7] धज के समय में रोड़ों में करेपा प्रथा की शुरुआत हुई और धज को अपनी राजधानी छोड़ एक स्थान पर निवास के लिये जाना पड़ा। धज के समय में इस प्रथा के आरम्भ होने का स्पष्टतः यह अर्थ लिया जा सकता है कि -सौरठ' के प्रश्न पर धज को विषम परिस्थितियां झेलनी पड़ीं। बल्कि

यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि इस प्रश्न पर रोड़ों का अपने विरोधियों से एक भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें इस जाति के अनेक युवा पुरुष अकाल मृत्यु के ग्रास बने। परिणाम स्वरुप जवान विधवाओं की समस्या सामने आई जिसका निदान करेपा प्रथा का पालन करते हुए किया गया।

शत्रु के बढ़ते हुए दबाव का संकेत इस बात से भी मिलता है कि राजा धज को अपनी वंशानुगत [पैतृक राजधानी] खेड़ागढ़ (खटकानगरी) से हटना पड़ा। इस घटना का वर्णन भाटों की बहियों में भी मिलता है। वे लिखते हैं :

"इसी रोड़ कुमार ने पंजाब देश में सिंध की धरती में रोड़वाल शहर बसाया, जिसको अब रोड़ी शंकर कहते हैं। इस शहर से जितने भी लोग निकले हैं, वे सभी रोड़े कहलाते हैं और रोड़ तो खुद उस शहर के मालिक थे।"

अगर इस कथन को सही मान लिया जाये तो दो बातें सामने आती हैं। प्रथम ऐसा प्रतीत होता है कि रोड़ कुमार के वहां पर बसने से पहले ब्राह्मण तथा खत्री नामक रोड़े या अरोड़े वहां आबाद थे। दूसरी बात यह माननी होगी कि रोड़ों, ब्राह्मणों तथा खत्री अरोड़ों की उत्पत्ति किसी एक ही पूर्वज से हुई। लेकिन इस विषय में इब्बेट्सन का यह कथन ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है कि : "I can hardly believe that the frank and stalwart Ror is of the same origin as the Arora."[8] स्पष्टतः इस तथ्य से भाट भी अनभिज्ञ नहीं हैं, जैसा कि उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है : "खत्री तथा दूसरे रोड़े कहलवाने वाले लोग हमारे रोड़ों में शामिल होना चाहते थे, जमीन लेने के लिये तथा बेटी व्यवहार के लिये। परन्तु इनका हमारा मेल नहीं खाता क्योंकि हमारे पूर्वज तो

क्षत्रिय-वंशी थे।" निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि भाटों द्वारा वर्णित, राजा धज द्वारा नव-स्थापित स्थान की पहचान रोड़ी शंकर से करना ठीक नहीं है। इस स्थान की खोज खटकानगी/खेड़ागढ़, तिस्सुगढ़ (तिसु टिले के खण्डहर) तथा बादली/बादलगढ़ के समीपस्थ क्षेत्र में ही की जानी चाहिए न कि आगरा क्षेत्र से दूर-दराज पंजाब-सिन्ध क्षेत्र में।

आगरा क्षेत्र में विस्तृत रुप से किलाबन्दीयुक्त सुदृढ़ एक प्राचीन राजधानी क्षेत्र का कारलाईल की सर्वे रिपोंट में इस प्रकार वर्णन मिलता है : "टुण्गला जंक्शन को उत्तर-पश्चिम में पीछे छोड़ते हुए दक्षिण-पूर्व की ओर कसौन्दीगढ़ी को जाने वाले मार्ग पर लगभग $2\frac{1}{2}$ मील चलने पर आंवड़ा/आंवड़ (Anwara) गांव आता है। इस गांव के मध्य में या यूं कहिए कि इस गांव के घेरे में एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष मिलते हैं। यह "किला नं० 1" है। इससे दो मील आगे चलने पर इलमपुर (Elampur) गांव आता है और इस गांव के $\frac{1}{4}$ मील उत्तर में "किला नं० 2" के खण्डहर मौजूद हैं। इलमपुर से $1\frac{1}{4}$ मील दक्षिण-पूर्व में एक अन्य किले के अवशेष मिलते हैं जिसके निकट ही एक प्राचीन तालाब या कुण्ड (Reservoir or Masonary) है जिसे "हाथी-का-हौज" कहा जाता है। यह "किला नं० 3" है।

अन्त में, लगभग चार मील ठीक पूर्व में, इलमपुर से आगे, कसौन्दीगढ़ पहुँचते हैं, जो कि प्राचीन किलों तथा टीलों से घिरा हुआ है—जिनमें से दक्षिण की ओर तीन की उपस्थिति स्पष्ट नजर आती है। ये यमुना नदी के नालों के दोनों ओर बने हुए थे जो दक्षिण में दो-तीन मील बहने के बाद यमुना में मिल जाते हैं। इस क्षेत्र के आस-पास "52 किलों" के अवशेष बताए जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व (1871 से पहले) तक इनमें से कई किलों के

काफी भाग खड़े थे। लेकिन गांव वालों तथा पड़ोसियों ने धीरे धीरे दीवारें नष्ट कर डाली। मेरा विश्वास है कि जब सर्व-प्रथम इस क्षेत्र में रेलवे लाईन बनाई गई तो इन लोगों ने उपरोक्त किलों में लगा हुआ सामान उखाड़ कर रेलवे अधिकारियों और ठेकेदारों को बेच दिया, जिन्हें शायद इस बात का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था कि यह सामान कहां से आ रहा है। अगर रेलवे अधिकारियों को वह सामान प्रयोग के लिये मिल गया था जिन-के ये किले बने हुए थे तो निस्संदेह रुप से उन्हें बर्तमान समय में लोक निर्माण विभाग द्वारा निर्मित सामान से कहीं अधिक अच्छा सामान प्राप्त हुआ होगा। कसौन्दीगढ़ के ध्वस्त किलों की नींव से कुछ ईटें भी प्राप्त की गई हैं ······ जिनकी लम्बाई कम से कम दो फुट से अधिक और मोटाई 8 ईन्च के लगभग है। इसके अतिरिक्त दीवारों के ऊपरी भाग में लगी ईटें लगभग उसी आकार की हैं जैसी औंधा खेड़ा तथा सूरजपुर (वतमान बटेश्वर, मध्य प्रदेश) से प्राप्त हुई है। ये ईंटें 15 ईन्च लम्बी तथा 4 ईन्च मोटी हैं। इस आकार की ईटें **बहुत ही प्राचीन होनी चाहिएं**[9] ········।

इस प्राचीन राजधानी क्षेत्र के अतीत के विषय में जिज्ञासा प्रकट करने पर सर्वेक्षण अधिकारियों को केवब इतना ही ज्ञात हो सका कि इन किलों में से प्राचीनतम किले का संस्थापक कोई राजा गज नामक व्यक्ति था। रिपोर्ट लेखक को किलों की प्राचीनता को देखते हुए प्राचीनतम गज नामक तीन शासकों में से किसी एक की इसके संस्थापक होने की सम्भावना प्रकट कर, अन्तिम निर्णय भविष्य में खोज करने वालों के लिये खुला छोड़ना पड़ा। पहले रिपोर्ट उद्धृत है :

इस क्षेत्र में ऐसा विचार प्रचलित है कि कसौन्दीगढ़ी या कम से कम इसके पड़ोस में स्थित प्राचीन ध्वस्त गढ़ियों की

स्थापना "राजा गज !" ने की थी। लेकिन तत्काल यह प्रश्न उठता है कि कौन-सा राजा गज ? दुर्भाग्य से प्राचीन राजाओं में तीन चार राजाओं के नाम गज हैं, उदाहरणतया :

(i) भट्टी वंश के जैसलमेर के 94 ई०पू० में होने वाले राजा गज जिनके एक पुत्र का नाम सालवाहन था।

(ii) गर्दभरुप, जिसे असभ्य भाषा में "गध"- 'गध्या" या गज भी कहा जाता था, सर्दशन या सदव-सैन नामक मालवा के शासक का पुत्र था। गध के विषय में कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उसका नाम वासुदेव था और वह मालवा के शासक विक्रमादित्य प्रथम (91 ई०पू०) का पिता था।

(iii) राजा गज सुपुत्र सुभाव या सुभाग जिसने गजनी की स्थापना की और जिसकी मुत्यु ········ तोन ई०पू० हुई बताते हैं। इन तीनों में से कसौन्दीगढ़ी का संस्थापक कौन था ?[10]

उपरोक्त सर्वेक्षण रिपोर्ट लेखक ने कसौन्दीगढ़ से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री के आधार पर इस स्थान की प्राचीनता तो जान ली। फिर उसने लोगों द्वारा इस स्थान के संस्थापक, 'गज' नामक शासक को पहचानने की कोशिश की। उसे 'गज' नामक दो ही लगभग समकालीन प्राचान शासकों के नाम मिले। मालवा के शासक 'गधैया' या गर्दरूपा तो नाम से ही एक भिन्न व्यक्ति ठहरते हैं। अब जैसलमेर या गजनी के दूरस्थ शासकों द्वारा रोड़-वंशी शासकों के प्रशासित क्षेत्र में अपने किले स्थापित करने की बात तर्क-संगत इसलिए भी नहीं लगती कि प्रथम शताब्दी के आस पास के समय में, जिस समय ये किले स्थापित किये गये थे, इस क्षेत्र में रोड़ शासकों का आधिपत्य

रहा है, जिसके स्पष्ट प्रमाण खंगणरोड़ (कगरोल) नामक निकटस्थ स्थान से प्राप्त सिक्के हैं। अतःएव हम कह सकते हैं कि उपरोक्त तीनों शासकों में से किसी ने भी कसौन्दी गढी की स्थापना नहीं की। हमारे विचार से इस क्षेत्र के पहले से चले आ रहे शासक वंश–रोड़-वंश–का कोई व्यक्ति ही इस स्थान का संस्थापक होना चाहिए। अगर ऐसा हुआ था तो इस वंश के शासक राजा धज (क्रम सं० 60), जो राजा तिसमान (क्रम सं० 58) के पौत्र तथा इन्द्रमन के पुत्र थे, उस स्थान के संस्थापक ठहरते हैं। इस क्षेत्र में जो विचारधारा फैली है उसमें संस्थापक का नाम राजा गज बताये जाने के पीछे, शायद संस्थापक और रिर्पोट लिखने के बीच का समय (लगभग 1800-1900 वर्ष) बाधक रहा हो। जिसके कारण वास्तविक संस्थापक धज की जगह 'गज' नाम प्रचलित हो गया हो। इस बात की सम्भावना इसलिये भी व्यक्त की जा सकती है कि रिर्पोट दर्ज करने से लगभग 700 वर्ष पूर्व रोड़ शासक वंश के सभी लोग उपरोक्त क्षेत्र से पलायन कर चुके थे और बाद में बसने वाले उस क्षेत्र के लोगों में इस वंश के प्राचीन शासकों के सही नाम याद रखने में रूचि में कमी आना मानव स्वभाव की स्वाभाविक प्रक्रिया का भाग है। जिसके कारण यह गलती हो गई होगी। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम अनुमान लगा सकते हैं कि कसौन्दीगढ़ी के प्राचीन दुर्ग की स्थापना रोड़ राजा धज ने की थी। इसी स्थान पर रोड़ों की मजबूत किले-बन्दीयुक्त सैनिक छावनी का विकास हुआ, जिसके खण्डहर आज भी अतीत के गौरव की गाथा कह रहे हैं।

भाटों के परम्परागत विवरण से बालनदेव द्वारा स्थापित 'बादली' नामक स्थान के विषय में भी 'खटकानगरी' की तरह रहस्यात्मक स्थिति सामने आती है। जिस तरह से खेड़ागढ़,

तिसमानगढ़ (तिसुगढ़ के खण्डहर) कसौन्दीगढ़ तथा खंगणरोड़ (कगरोल) इत्यादि ऐतिहासिक रोड़ों द्वारा स्थापित नगर अब खण्डहरों के रुप में होते हुए भी अपने संस्थापकों का इतिहास पुरातात्त्विक अवशेषों के रुप में जीवित रखे हैं, ऐसा ही 'बादली' के विषय में भी होना चाहिए। जिससे अतीत के इतिहास के सूत्र जोड़े जा सकें। परन्तु रोड़ों के विषय में भाटों द्वारा संग्रहित विवरण में ददरोड़ (क्र० सं० 101) के पश्चात विवरण की अत्यधिक कमी साफ झलकती है। वे उसके पुत्रों सम्बन्धी जानकारी देते हुए लिखते हैं कि : ददरोड़ के नौ पुत्र हुए-अलमी, थर्राज, खान, बालणसी, चांद, हट्टू, शाम, कल्याण और मान। कल्याण की औलाद बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चली गई तथा हट्टू की औलाद सिरकी बन्द सपेलों में मिल गई और सात भाईयों की औलाद इस धरती में बादली में रही। एक राजा इनमें महलसी हुआ जिसने लखनऊ की तरफ उर्पल में राज्य किया। उसने पृथ्वीराज महोबे वाले के बेटों को आपस में चुगली करवा कर मरवा दिया। इन सात भाईयों के कुटुम्ब के साथ गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक का डोलों को लेकर झगड़ा हुआ··· ··· जब ये लोग (कुटुम्ब) बादशाही दल के आगे हार गये तो वहां से भाग कर ये कुरुक्षेत्र भूमि में आए।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि ददरोड़ के उत्तराधिकारियों में से दो, कल्याण तथा हट्टू, की औलाद बादली से दूसरे स्थानों पर जा बसी। अन्यों के विषय में रोड़ों के भाट सिर्फ इतना ही लिखते हैं कि वे इसी भूमि में अर्थात बादली में रहे और वहीं पर उनके वंशजों का 'सुलतान' से झगड़ा हुआ। इससे स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि ददरोड़ इस वंश का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक था जिसके पश्चात् इस वंश का राजनैतिक रुप से महत्व समाप्त हो गया और महलसी द्वारा

लखनऊ की ओर उर्पल क्षेत्र में रहते हुए पृथ्वीराज नामक महोबे के शासक के पुत्रों को आपस में झगड़ा करवाकर मरवाने की कहानी में शायद रोड़ शासकों का महोबे के शासकों के साथ कोई झगड़ा होने का संकेत छिपा हुआ लगता है। ददरोड़ के वंशजों कल्याण, हट्टू तथा बाद में महलसी इत्यादि का बादली से दूसरे स्थानों पर जाना और बाद के शासकों के नामों का न मिलना, इस बात की पुष्टि करता है कि मुस्लिम शासक के साथ हुए जिस संघर्ष का भाट वर्णन करते हैं उससे पहले ही 'बादली' नामक उनके प्राचीन गढ़ से उन्हें हटने के लिये विवश होना पड़ा था। जिस कारण से सम्भवतः वे तीन दिशाओं में चले गये। (कुछ रोड़ बुन्देलखण्ड चले गये, कुछ लखनऊ की तरफ उर्पल चले गये और शेष हरियाणा में आकर बस गये।) शायद वे झज्जर तहसील में आबाद बादली नामक स्थान पर रहे जहां पर आज भी रोड़ों का कुआं तथा रोड़ों का दरवाजा नामक स्मृति चिह्न उनकी उपस्थिति की कहानी कह रहे हैं।

हमारे उपरोक्त विश्लेषण की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि पृथ्वी राज चौहान के मण्डलिक सूरमाओं की सूचि में विभिन्न छः रोड़ सूरमाओं के नाम गिनवाए गये हैं, जिनमें बीर सिंह महला का भी नाम सम्मिलित है जो मुहाने (हरियाणा) का मण्डलिक अधिकारी था'[11]। इसी प्रकार, भाट वर्णनानुसार, बालदा गोत्री रोड़ों को पृथ्वीराज के समय में हरियाणा प्रदेश के भैण, मोरी इत्यादि के निकटवर्ती 70-72 गांवों की जागीर इनाम में मिली हुई थी[12]। इससे सिद्ध होता है कि कुतुबुद्दीन के साथ बादली में अगर रोड़ों का संघर्ष हुआ भी तो वह स्थान प्राचीन रोड़-वंशी शासकों की राजधानी न होकर उनका बाद में अधिकृत/आबाद गांव बादली हो सकता है।[13]

अब यह प्रश्न स्वाभाविक रुप से उत्पन्न होता है कि

प्राचीन बादली की भौगोलिक स्थिति क्या थी जिस पर इसके संस्थापक बालनदेव (क्रम० सं० 48) से लेकर ददरोड़ (क्र० सं० 101) तक 54 रोड़वंशी शासकों ने शासन किया था ! निश्चित रुप से इतने लम्बे काल तक इस छोटे राज्य का प्रमुख केन्द्र होने के कारण वहां पर महल-किले इत्यादि का भी निर्माण हुआ होगा। हमारे विचार से प्राचीन बादली का नाम बादलगढ़ रहा होगा, जैसा कि रोड़ों के अन्य प्राचीन स्थानों तिसमानगढ़, बेड़ागढ़, कसौन्दीगढ़ इत्यादि के नामों से आभासित होता है। साथ ही, ऐसा लगता है कि रोड़ वंशी शासकों का राज्य ज्यादा विशाल नहीं था। अतः उपरोक्त स्थानों के निकटवर्ती क्षेत्रों में ही बादलगढ़ भी होना चाहिए जिस स्थान पर महोबे के शासक पृथ्वीराज के साथ उनका युद्ध हुआ और जहां से वे लखनऊ, बुन्देलखण्ड तथा हरियाणा की ओर नये स्थानों पर जा बसे।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर आगरा के आस-पास के क्षेत्र में ही बादलगढ़ की खोज की जानी चाहिए। पुरातात्त्विक विभाग ने वर्तमान आगरा शहर (अकबर द्वारा बसाया जाने के कारण इसे अकबराबाद भी कहा जाता रहा है) के अतीत के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये जब वहां सर्वेक्षण किया तो तत्कालीन वस्तुओं के अवशेष प्राप्त हुए एवं आगरा के निवासियों ने दो स्थानों के बारे में यह जानकारी दी कि वहां पर प्राचीनकाल में बादलगढ़ नामक दुग था। प्रथम, उनके अनुसार आगरा में स्थित वर्तमान किले के उत्तर-पश्चिम में प्राचीन बादलगढ़ था। यद्यपि उपरोक्त स्थान की खुदाई से आगरा में स्थित वर्तमान किले से पहले बने भवनों में प्रयुक्त सामग्री वहां से मिली है, परन्तु कनिंघम, जो इस खोज के इंचार्ज थे, के अनुसार, प्राप्त साक्षी के आधार पर इस स्थान पर प्राचीन समय में कोई किला होना साबित नहीं होता[14]।

दूसरा स्थान, **जिसे** प्राचीनकाल में बादलगढ़ कहा जाता था, आजकल (1871-72 ई० में) खण्डहरों के रुप में लोधी खां के टीले के नाम से जाना जाता है । लोधी—खां—का—टीला, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, प्राचीन-काल में बने हुए भवनों के मलबे का एक ढ़ेर है जिसमें प्राचीन दीवारों के भग्नावशेष अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस स्थान पर नवीन भवनों गलियों एवं नालियों इत्यादि के विकसित हो जाने के कारण टीले का वास्तविक अस्तित्व लगभग समाप्त—प्रायः हो गया है। फिर भी इस स्थान के नीचे अतीत में बने बादलगढ़ का इतिहास दबा हुआ है।[15]

बादलगढ़ के किले का निर्माण "निस्सन्देह रुप से हिन्दुओं द्वारा" किया गया था[16]। इसके जिस स्थान पर खण्डहर मिलते हैं उस स्थान को लोधी-खां का टीला कहे जाने के पीछे भी एक लम्बा इतिहास है। उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, भारत-वर्ष पर मुस्लिम शासन की स्थापना के पश्चात सिकन्दर बिन बहलोल लोधी प्रथम व्यक्ति था जिसका बादलगढ़ की तरफ ध्यान आकृष्ट हुआ। उसने इस प्राचीन स्थान का जीर्णोद्धार करके अपने निवास के लिये उपयुक्त बनवाया तथा वहां बने दुर्ग को सुदृढ़ किया। उसके नाम पर इसे प्राचीन पठान दुर्ग के नाम से भी पुकारा जाता है। सिकन्दर-बिन—बहलोल—लोधी ने, आगरा के उस क्षेत्र में जिसे आजकल सिकन्दरा कहा जाता है एक भव्य बारादरी का भी (1495 ई०) निर्माण करवाया था।

रोड़-वंशी शासकों के क्षेत्र में स्थित बादलगढ़ नामक इस प्राचीन स्थान की स्थापना एवं विकास की खोजपूर्ण कहानी भारतीय मूक इतिहास के अनेक पृष्ठ उज्ज्वल कर सकती है।

विशेषकर रोड़ों के लिये इस **खोज** का विशेष महत्व है क्योंकि इस स्थान के पतन के साथ ही प्राचीन रोड़-शासकों के राजनैतिक इतिहास का पटाक्षेप हो जाता है।

प्राचीन रोड़ वंशी शासकों से सम्बन्धित लोक-गाथाओं, सिक्कों, मूर्तियों, आकृतियों तथा अन्य कला-कृतियों के अवशेषों के आधार पर उपरोक्त पृष्ठों में वर्णित उनके इतिहास की रुप-रेखा तैयार होती है। लेकिन, तत्सम्बन्धी सामग्री की न्यूनता के कारण जब उनका राजनैतिक इतिहास ही अपूर्ण है तो तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का सही आकलन करना अत्यधिक कठिन कार्य है। इस विषय में प्राप्त सामग्री से रोड़ों के बारे में जो सूत्र मिलते हैं, उनका वर्णन निम्नांकित किया जा सकता है :

कसौन्दीगढ़ व तिसमानगढ़—खेड़ागढ़ (खटनानगरी) के स्थानों पर प्राचीन टीलों के नीचे दबे हुए खण्डहरों से अतीत में तैयार किये गये स्थापत्य एव भवन निर्माण कला के सुन्दरतम नमूने मिलते हैं, जिन्हें गुणात्मक रुप से, कनिंघम के कथनानुसार, ब्रिटिश सरकार के भवन निर्माण या लोक निर्माण विभाग द्वारा 1871-72 में प्रयुक्त सामग्री से उत्तम माना जा सकता है। इस रोड़-शासित क्षेत्र में स्थित भवनों एवं दीवारों पर अत्यन्त उम्दा चित्रकारी के उदाहरण मिलते हैं जो खेड़ागढ़ के वर्तमान गांव के स्थान पर उपलब्ध भवनों के अवशेषों में देखी जा सकती है। खंगण-रोड़ द्वारा स्थापित किले से, जो वर्तमान कगरोल गांव के स्थान पर था, प्राप्त सामग्री से हमें पता चलता है कि रोड़ शासक बड़े कलाप्रिय थे। उनके यहां योग्य कलाकार सेवारत थे, जो "अति उत्तम ढंग से मूर्तियां बनाने में सिद्धहस्त थे।"[12]

खंगण-रोड़ के किले से पीले रंग के रेतीले पत्थर पर बनी हुई एक प्राचीन कला-कृति प्राप्त हुई है। सर्वेंक्षण रिर्पोट में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है :[18]

खंगण-रोड़ के किले से पीले रंग के रेतीले पत्थर पर बनी हुई एक प्राचीन कला-कृति प्राप्त हुई है। सर्वेक्षण रिपोट में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है :

यह अति उत्तम ढंग से बनाई गई आकृति है जिसके चेहरे के भाव सुस्पष्ट हैं और इस योद्धा की मर्दानगी (पौरुष प्रदर्शित करते हैं। इसे हिन्दू कला का सुन्दरतम नमूना कहा जा सकता है। इस आकृति में वर्णित योद्धा का दायां घुटना उठा हुआ है, उसकी दायीं भुजा में ढाल है तथा बायें हाथ में एक अत्यन्त विशाल आकार की तलवार है जो इसके सिर के ऊपर से लहराती—सी नजर आती है। उसकी कमर पर बंधी पेटिका में बांई ओर एक चौकोर मूठ वाली कटार है। उसके सिर पर घने बाल हैं जिन्हें सीधे पीछे की तरफ संवारा हुआ है। यह आकृति लंगोट, कमर में बंधी पेटी और गले में बन्धे तीन लड़ी के हार को छोड़-कर शेष नग्न है। स्पष्टत: यह आकृति किसी अति बलवान योद्धा की है जो शायद प्राचीन समय में इस वंश का कोई नायक रहा होगा। कोई आश्चर्य नहीं होगा कि वह स्वयं रोड़ राजा की ही आकृति हो।[18]

इस आकृति से तत्कालीन रोड़ों की सुन्दर एवं बलिष्ठ शारीरिक संरचना का, जो आज भी न्यूनाधिक रुप में विद्यमान है, हमें पता चलता है। आकृति के गले में तीन लड़ी के हार का होना सिद्ध करता है कि उस समय पुरुष भी आभूषण धारण करते थे एवं उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ थी। युद्धाभ्यास में संलिप्त योद्धा की यह आकृति इस बात को भी प्रकट करती है

कि तत्कालीन रोड़ युद्ध की हर चुनौतीं का मुकाबला करने की पूरी तैयारी रखते होंगे। इसके अतिरिक्त रोड़ शासकों की कला-प्रियता एवं उनके कलाकारों की सिद्ध-हस्तता तो इससे स्वयं ही सिद्ध हो जाती है।

यद्यपि भाटों के परम्परागत विवरण से रोड़ों की सामाजिक तथा धार्मिक दशा के विषय में ज्यादा पता नहीं चल पाता, फिर भी इस विषय में कुछ सूत्र हमें मिलते हैं। सर्वप्रथम् यह बात सिद्ध हो जाती है कि वे महाभारत काल (उत्तर वैदिक काल) में हस्तिनापुर, मथुरा तथा बैराठ (विराटनगर) के शासकों से निकटस्थ एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए थे। जहा पर हस्तिनापुर का शासक कुरू, खेड़ागढ़/खटकानगरी के रोड़ शासक रूरू को 'धर्मपुत्र' मानता था, तो मथुरा के शूरसेन वंशी शासक के साथ तालमदेव (क्रम सं० 29) की पुत्री का विबाह हुआ और तालनदेव (क्रम सं० 33) की पुत्री का विवाह विराटनगर के शासक के साथ हुआ। इससे पता चलता है कि आगरा क्षेत्र की शासक रोड़ जाति का तत्कालीन राजनीति में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा और साथ ही उनकी समाज में स्थिति सुदृढ़ रही होगी। इस समय में वर्ण अनेक जातियों में विभाजित होने शुरू हो गये थे और समाज व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर वर्गों में ही बंटा हुआ था। परन्तु भोजन, पानी, विवाह आदि में जन्म से जाति के आधार पर प्रतिबन्ध दृढ़ नहीं हो पाये थे। रोड़ क्षत्रिय जाति के उपरोक्त विवाह सम्बन्धों के साथ ही उनकी अपनी रानियों में कई ऋषियों एवं ब्राह्मणों की पुत्रियां होने के उदाहरण मिलते हैं। अन्तल ऋषि की पुत्री आत्मा देवी का विवाह रोड़ वंशी तालमदेव के साथ हुआ और ददरोड़ की रानी कलावती एक ब्राह्मण की पुत्री बताई जाती है। ये प्राचीन भारतीय इतिहास में अनुलोम विवाह के अच्छे उदाहरण हैं।

प्राचोन रोड़ वंशी शासक स्त्रियों को यथोचित आदर की दृष्टि से देखते थे। उन्हें अपने दैनिक जीवन में गृह-कार्य के अतिरिक्त स्वाध्याय एवं भगवत् भक्ति के लिये भी पर्याप्त समय मिलता था जिससे वे एक सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करती थीं। कगरौल/खंगणरोड़ से "स्त्री की एक ऐसी आकृति मिली है जिसके चेहरे पर सन्तोष छाया हुआ है और वह (साधना में) घुटनों के बल झुकी हुई या बैठी हुई है।"[19] इसी सन्दर्भ में 'सौरठ-हरण' के प्रश्न पर राजा धज के समय में हुए संघर्ष के दूरगामी परिणाम का वर्णन करना अनावश्यक नहीं होगा। जब इस संघर्ष में रोड़ जाति के अनेक नौजवान अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए तो इन्हें जवान अवस्था में विधवा हुई स्त्रियों की विकराल समस्या का सामना करना पड़ा। तत्कालीन रोड़ समाज ने बड़ी समझदारी का परिचय देते हुए वेदोक्त मार्ग पर चलने का निर्णय लिया और इन अबलाओं को 'सती' या वैधव्य जीवन की ओर धकेलने की बजाय समाज में शान के साथ पुनः प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करने का मार्ग खोल दिया। उन्होंने कुछ सामाजिक रस्में पूरी करके विधवा स्त्रियों का उनके मृत पतियों के भाईयों के साथ पुनः विवाह कर दिया, जिसे करेपा या करेवा कहा जाने लगा। कालान्तर में रोड़ जाति द्वारा इस प्रथा का विस्तृत रुप से पालन किया जाता रहा जिसकी पुष्टि इस तथ्य से हो जाती है कि प्राचीन रोड़-शासक परिवार के विषय में भाटों के वर्णन में एक भी रोड़-स्त्री के 'सती' होने या वैधव्य जीवन की कठिनाईयों भरे जीवन का वृतान्त नहीं मिलता।

परन्तु आगरा-क्षेत्र से पलायन के पश्चात स्त्रियों के प्रति रोड़ों में ऊपर लिखित व्यवहार में परिवर्तन के लक्षण मिलते हैं। शायद कुछ रोड़ घरानों में राजपूतों की देखा दखी 'करेपा' प्रथा

को छोड़ दिया गया। यही कारण है कि रोड़ जाति की कुछ स्त्रियों द्वारा अपने मृत-पति के साथ आत्मदाह (सती) के उदाहरण भाट-वर्णन में स्थान पाए हुए हैं। लेकिन, आमतौर पर सती-प्रथा का प्रचलन सीमित ही रहा है और करेपा/करेवा प्रथा के रुप में प्रचलित रही है, जिसे रोड़ समाज में वैध-विवाह का दर्जा प्राप्त था और आज भी यह प्रथा इसी प्रकार कायम है।

सन्दर्भ

1 दृष्टव्य, परिशिष्ट 5. साथ ही गुलिया गोत्री जाटों का इतिहास लिखते हुए भाट लिखते हैं कि बादली की स्थापना उनके पूर्वज बदरसैन ने आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व की थी।

2 आर्कैल्योजिकल सर्वे रिपोर्ट फॉर दि इयर 1871-72, वाल्यूम IV.

3 भाट विवरण

4 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 210

5 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 210-212

6 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 212

7 करेपा का अर्थ है किसी स्त्री के पति की मृत्यु पर उसका किसी अन्य व्यक्ति के साथ वैध वैवाहिक सम्बन्ध कर उसे समाज में स्थापित कर देना।

8 मुझे विश्वास नहीं आता कि निडर और योद्धा रोड़ों की उत्पत्ति भी उसी पूर्वज से हुई है जिससे अरोड़ों की—(इब्बैट्सन, उपरोक्त, पृष्ठ 178)

9 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 208-209 तथा 229-30

10 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 210

11 पृथ्वीराज रासो व प्राचीन रोड़ बहियों के आधार पर सुलतान सिंह द्वारा प्रस्तुत विवरणानुसार, पृथ्वीराज के अधीन लड़े छः रोड़ सूरमाओं के नाम इस प्रकार हैं : "भूप महला तथा उसका भाई देवतराय महला, उरियल के मण्डलिक, पुलहनराय रोड़ गांव बक्सिया (झांसी के निकट) का सूरमा मण्डलिक, बीर सिंह रोड़ महला गांव मुहाने का मण्डलिक सूरमा, सागर सिंह तथा पाहन सिंह मण्डलिक सूरमे इत्यादि."

12 भाट वर्णन

13 देखिये, परिशिष्ट 'अ'

14 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ xiv, 93–108

15 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 98-99

16 उपरोक्त रिपोर्ट, कनिंघम का प्राकथ्थन, पृष्ठ xiii एवं पृष्ठ 98

17 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 211

18 उपरोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ 211-212

19 उपरोक्त रिपोट, पृष्ठ 212

परिशिष्ट 'अ'

ऐबक के साथ रोड़ों का 'युद्ध व परिणाम'

रोड़ इतिहास को समझने के लिए, अन्य सामग्री के अतिरिक्त, श्री सुलतान सिंह और श्री देशराज कृत रोड़ इतिहास (हस्तलिखित प्रतिलिपि) अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में विभिन्न गोत्रों के इतिहास का वर्णन भी लिखा गया है, जिसके अनुसार सन् 1026 विक्रमी संवत् में दोपला/चौहान गोत्र के संस्थापक दीपचन्द चौहान को अमीन के गिर्द बसे चौरासी गांवों की जागीर उसके पिता राणा हर राय चौहान ने प्रदान की थी । इसी प्रकार बालदा गोत्री रोड़ मुखिया व्यक्तियों के पास राम राय—भैण—मौरी इत्यादि—गांवों की जागीर 1136 विक्रमी सम्वत् में होने का उल्लेख मिलता है। कल्याण रोड़ गोत्री, जीत सिंह को पृथ्वीराज चौहान द्वारा विक्रमी

सम्वत् 1245 में हरियाणा क्षेत्र में जागीर देने का वर्णन है। इसी प्रकार सम्वत् 1265 विक्रमी से पहले महला, थोला, किलाणिया, खसबर, घड़तान, भूकना, कन्धोल, कायंरा, रूहल्याण, कादियाण, खोखरा, सगवाल, लाठर, भैनीवाल, जोगरान/जगलान इत्यादि ग्रनेक गोत्री रोड़ों के विभिन्न स्थानों पर हरियाणा में बसने का उल्लेख मिलता है। उपरोक्त विवरण के ग्रतिरिक्त मुहाने के रोड़ों के प्रभावशाली व्यक्ति बीर सिंह महला तथा उसके भाईयों द्वारा हरियाणा सर्व-खाप पंचायत, सौरम के तत्वाधान में पृथ्वीराज चौहान की मोहम्मद गौरी के विरुद्ध सहायता के लिए भेजी गई सेनाग्रों की कमान सम्भालने का वर्णन सौरम रिकार्डस तथा भाट विवरण में मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि मुहम्मद गौरी के भारत पर ग्राक्रमण ग्रारम्भ होने के समय रोड़ जाति के लोग हरियाणा में ग्राबाद हो चुके थे।

परन्तु इस विषय में रोड़ जाति की परम्परा तथा भाट विवरण कुछ और ही कहानी कहते हैं। प्रथम, हम रोड़ परम्परा को लेते हैं :

जैसाकि पहले भी लिखा जा चुका है, रोड़ जाति में यह विश्वास व्याप्त है कि उनके पूर्वजों ने बादली (झज्जर-रोहतक) नामक स्थान पर, ग्रपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कुतुबुद्दीन की सेनाग्रों के समक्ष ग्रात्म-समर्पण करने की बजाए, कुरूक्षेत्र के जंगलों में नये गोत्र एवं गांवों की स्थापना करना ज्यादा उपयुक्त समझा। इस जाति के ग्रनेक सज्जनों ने इस घटना का जो विवरण दिया है उसका सार यह है कि प्राचीन कालीन रोड़ रक्षा-बन्धन के त्यौहार के दिन ग्रस्त्र-शस्त्रों की पूजा करते थे और उस दिन वे इनकाप्र योग किसी भी परिस्थिति में नहीं करते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक को इस मान्यता की सूचना पुरोहित (किसी भेदिये ?) ने दे दी। इस रहस्य की सूचना प्राप्त होते

ही मुस्लिम सेनाग्रों ने रक्षा बन्धन के दिन रोड़ों को बादली नामक स्थान पर घेर लिया। ग्रब 'घर का भेदी लंका ढ़ाए' की कहावत चरितार्थ हुई तो रोड़ों के समक्ष शत्रु से बचने के लिए वहां से भागने के सिवाय कोई चारा न था। ग्रन्ततः उनके पूर्वजों में से 84 व्यक्ति कुरूक्षेत्र के निकटवर्ती स्थानों पर ग्राकर ग्राबाद हो गए।

भाट विवरणानुसार ददरोड़ के सात पुत्रों के वंशजों के साथ संवत् 1265 विक्रमी (सन् 1207 ई०) में बादली के स्थान पर कुतुबुद्दीन ऐबक का डोलों के प्रश्न पर झगड़ा हुआ। जिसमें रोड़ों की सहायता करने के लिए ग्रामेर के कच्छवाहा राजपूत राजा मलयसी ने अपने 31 पुत्र भेजे। इस युद्ध में हारने के पश्चात 84 व्यक्ति वहां से भागकर कुरूक्षेत्र भूमि में विभिन्न 84 स्थानों पर बस गए। इन्हीं 84 व्यक्तियों के नाम तथा ब्योंग पर रोड़ों के ग्राधुनिक 84 गोत्र बने हैं।

दुर्भाग्यवश, रोड़ जाति में इन दोनों कथनों को इतिहास की सत्य घटना के रुप में मान्यता प्राप्त है। लेकिन उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि ऐबक के साथ महला रोड़ों के संवत् 1265 विक्रमी (1207-8 ई०) में डोलों के प्रश्न पर हुए युद्ध से पहले ही हरियाणा में ग्रनेक गोत्री रोड़ों की विभिन्न बस्तियों का उदय हो चुका था, जिनकी पुष्टि सौरम रिकाड्ंस से भी होती है। ग्रतः यह ग्रनुमान लगाया जा सकता है कि बादली के स्थान पर महला गोत्री रोड़ों की कुतुबुद्दीन ऐबक की सेनाग्रों से मुठभेड़ हुई। जिसका रोड़ों के भाटों ने अतिरंजित वर्णन किया होगा। 'ग्रामेर पति मलयसी' के 31 राजपुत्र कच्छवाहों द्वारा महला रोड़ों की युद्ध में सहायता करना, इन सभी का युद्ध के बाद 31 रोड़ गोत्र स्थापित करने

के लिए जीवित रहना और इनमें से एक—मोहनदास के विषय में यह वर्णन कि वह "बादली से उठकर पहले गांव बिनौली बैठे। फिर मुहाना बसाया और 126 गोत्र के टीका पगड़ी का हकदार हुआ," इत्यादि उपरोक्त प्रक्रिया का एक भाग लगते हैं।

जो भी हो, इस घटना में ऐतिहासिकता की कमी स्पष्ट नजर आती है। इस विषय में भविष्य में नयी खोज होने तक इसी बात को मानना पड़ेगा कि इस घटना के बाद बादली में स्थित रोड़ परिवार भी हरियाणा के अन्य गावों में जा बसे।

चार

हरियाणा में रोड़ों का आगमन

जैसा कि पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है, ददरोड़ (क्रम सं० 101) के पश्चात् रोड़ शासक वंश की वृक्षावली समाप्त-प्रायः हो जाती है। इसका यह अभिप्राय लिया जा सकता है कि ददरोड़ के अन्त के साथ ही आगरा क्षेत्र में इनकी राजसत्ता समाप्त हो गई और इस वंश के लोग अन्य स्थानों पर जा बसे।

ऐसा प्रतीत होता है कि बादली, तहसील झज्जर (रोहतक) तथा मुहाना, जिला सोनीपत में ददरोड़ की मृत्यु के पश्चात तथा भारत में सल्तनत की स्थापना होने से पहले (पूर्व मध्यकाल में) रोड़ों ने इस क्षेत्र में बसने वाली अन्य जातियों के लोगों से मिलजुल कर समाज में अपना महत्वपूर्ण

स्थान बना लिया था। यही कारण है कि इस क्षेत्र की विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा करने के लिये इन्होंने भी यथासामर्थ्य भाग लेना आरम्भ किया एवं आवश्यकता पड़ने पर बलिदान दिए। इस कार्य के लिए इन्होंने इस क्षेत्र के पंचायती संगठनों में सक्रिय रुप से हिस्सा लिया।

आगरा क्षेत्र से बादली (झज्जर), मुहाना तथा कुरुक्षेत्र आदि स्थानों पर जंगलों में घिरे गांवों में रोड़ों ने प्रवेश किया तो उनकी संख्या बहुत ही सीमित थी। उनके हित इन गांवों में रहने वाली अन्य जातियों के लोगों से सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से ज्यादा भिन्न न थे। अतः वे उनसे मिल-जुलकर रहने लगे। कालान्तर में उन्होंने वर्तमान अम्बाला, कुरुक्षेत्र, करनाल और जींद जिलों के जंगली भागों को साफ करके अपनी सुरक्षित बस्तियों की स्थापना की। ये रोड़ गांव भी अन्य हरियाणवी गांवों से सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रुप में परस्पर जुड़े हुए थे। प्रत्येक गांव आन्तरिक मामलों में ग्राम पंचायत द्वारा निर्धारित नियमों में रहकर किसी भी बाह्य दबाव का सामना करने की पूर्ण तैयारी रखता था। साथ ही ये ग्राम-पंचायतें हरियाणा सर्व खाप पंचायत, सौरम के तत्वाधान में अपने सामूहिक हितों की रक्षा के लिये अपने यहां से पंच, योद्धा और मल्ल इत्यादि भेजती थी। इन ग्रामों के विषय में सी० टी० मैटकाफ के विचार भी द्रष्टव्य हैं :

"ये ग्राम समुदाय छोटे छोटे गणराज्यों की भांति हैं। इन पर किसी का बाह्य दबाव अथवा नियंत्रण नहीं है। ये अपना सब काम स्वेच्छा से एवं स्वतन्त्र रहकर करते हैं। ये शताब्दियों से अपने आपको अक्षुण्ण बनाए चले आ रहे हैं। कितने ही राजवंशों का पतन हो गया, और वे मिट गए, कितनी ही क्रांतियां आई और समाप्त हो गई, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठे,

सिख तथा अंगरेजों के राज्य बारी बारी से आए परन्तु ये ग्राम समुदाय वैसे के वैसे बने खड़े हैं, कठिनाइयों के समय इन्होंने हथियार उठाए और शत्रु से दो दो हाथ करके अपनी रक्षा की, बड़ी बड़ी सेनाएं जब भी इस प्रदेश से गुजरी तो ये समुदाय अपने को तथा अपने पशुओं को गांव में बन्द कर देते और उन्हें बिना किसी रुकावट के गुजरने देते, किन्तु यदि कोई उन पर आक्रमण करता तो वे उसका विरोध करते थे।"[2]

जब रोड़ सौरम सर्वखाप पंचायत के सदस्य बने तो धीरे-धीरे वे उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मुजफ्फर नगर तथा बिजनौर जिलों में भी जाकर आबाद होने लगे।[3] वहां भी जंगलों से ढकी कृषि योग्य भूमि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। रोड़ों के पूर्वज बड़े समझदार निकले, जिन्होंने अपने समकक्ष कृषक जातियों से मिलकर तथा कड़ी मेहनत करके यमुना-गंगा मैदान के सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र में अपनी बस्तियां बनाई और प्राचीन रोड़ वंशी शासकों की भांति ही कृषक–सैनिक जाति के रुप में मध्यकालीन विशाल हरियाणा के इतिहास में यथोचित भूमिका निभाई।

रोड़ों की इस भूमिका के अध्ययन के लिये यद्यपि स्वतन्त्र रुप से हमें कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती, तथापि हरियाणा सर्व खाप पंचायत सौरम के अभिलेखागार में प्राप्त सामग्री के आधार पर हम निम्नलिखित पृष्ठों में इस जाति की गतिविधियों की एक झलक प्रस्तुत करेंगे। पहले इस विषय में चौधरी कबूल सिंह वर्तमान सचिव, सर्व खाप पंचायत सौरम का यह कथन उद्धृत है : "मुस्लिम काल में इस पंचायत ने देश-धर्म व समाज हित में जो युद्ध करे उनमें इस वीर जाति रोड़ों के अनेक गोत्रों के योद्धाओं

ने बलिदान देकर अमर पद पाया है। रोड़ जाति के भाईयों के मुस्लिम काल आरम्भ होने से लेकर मुगल वंश का अन्त होने तक अनेक युद्धों में भाग लेने के स्पष्ट प्रमाण हमारे पास रिकार्ड में उपलब्ध हैं।''[4]

हरियाणा सर्वखाप पंचायत, सौरम उत्तरी भारत की राजनीतिक घटनाओं में विशेष रुचि लेती रही है। इसकी गतिविधियों को देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हरियाणवी क्षत्रिय वीरों के इस संगठन ने निरन्तर जागरुकता का परिचय देकर देश की स्वाधीनता की रक्षा एवं आत्मसम्मान की भावना को बनाए रखने के लिये हर सम्भव बलिदान दिये। सर्व प्रथम राजा दाहिर को इस पंचायती—संगठन ने सन् 712 ई॰ में मुहम्मद—बिन—कासिम के आक्रमण के समय ससैन्य सहायता पहुँचाई ताकि उत्तर—पश्चिमी सीमाओं से विदेशी सेनाएं हमारे देश में प्रवेश न कर सकें।[5]

तत्पश्चात् 1240 विक्रमी सम्वत् (1183 ई॰) में सर्वखाप पंचायत ने हरिद्वार में एक सभा का आयोजन किया जिसमें विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करने के लिये 18,000 मल्ल योद्धाओं की एक सेना बनाने का निर्णय लिया गया। इस सेना का मुख्य सेनापति समर सिंह रोड़ नियुक्त किया गया। जिसके सहायक सेनापतियों में तीन जाट, पांच गूजर, चार अहीर, तीन राजपुत्र (राजपूत), दो सैनी तथा चार ब्राह्मण थे।[6]

सर्वखाप पंचायत ने धर्म समुचित व्यवहार करते हुए, दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की प्रार्थना पर अपनी सेनाओं की सेवा उसे सौंप दी। मौहम्मद गौरी से हुए तरावड़ी (तराईन) के दोनों युद्धों (1191 ई॰ तथा 1192 ई॰) में इन सेनाओं ने

अपूर्व शौर्य का परिचय दिया। इन महत्वपूर्ण युद्धों में देवतराय, सागर सिंह, भूप सिंह महला तथा बीर सिंह महला (मुहाने का) इत्यादि रोड़ सूरमाओं[7] द्वारा अपनी सजातिय सेनाओं का नेतृत्व करते हुए देश-धर्म के लिये युद्ध में भाग लेने का प्रमाण सौरम रिकार्ड्स तथा भाट विवरण से मिलता है। तरावड़ी के द्वितीय युद्ध (1192 ई॰) में शहाबुद्दीन मौहम्मद गौरी की विजय ने चौहान नरेश के भाग्य का अन्तिम निर्णय कर दिया। परन्तु विजयी आक्रमणकारी—विदेशी सेनाओं को हरियाणा की वीर जनता ने कदम-कदम पर लड़ने के लिये ललकारा, स्वदेश—प्रेम एवं सम्मान की रक्षा के लिए हांसी, सिरसा, रोहतक, महम, रेवाड़ी तथा मेवात क्षेत्र में अनेकों दिनों के निरन्तर संघर्ष में सैकड़ों योद्धा युद्ध में काम आये तब जाकर कुतुबुद्दीन ऐबक के नेतृत्व में अफगान हरियाणा पर अपना अधिकार करने में सफल हुए[8]।

तरावड़ी का दूसरा युद्ध भारतीय इतिहास की एक युग—परिवर्तनकारी घटना है। इस निर्णायक युद्ध ने चौहानों की सैनिक-शक्ति को लगभग पूर्णतया भंग कर दिया और विजय के उपरान्त मौहम्मद गौरी ने भारतवर्ष में एक विदेशी तुर्की या अफगान राज्य की नींव डाल दी। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ॰ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में, मुहम्मद गौरी ने "दिल्ली के पास इन्द्रप्रस्थ में अपने सबसे अधिक विश्वसनीय नायब कुतुबुद्दीन ऐबक की अधीनता में एक तुर्क सेना रख दी। सभी विजित स्थानों में हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े गये और उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी की गई।''[9]

हरियाणा सर्वखाप पंचायत ने इस नई परिस्थिति का मुकाबला करने के उपाय खोजने के लिये ग्राम भाज्जू-भनेड़ा के निकट जंगल में जेष्ठ शुदि तीज, सम्वत् 1258 विक्रमी (जून

1201 ई०) को एक सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता विजय राव (बाबू नन्दराम के भतीजे) ने की। इस सभा में हरियाणा से जयराम चौहान रोड़ (नारनौंद) तथा चन्दुमल महला रोड़ (पलवल) ने भाग लिया था। इस सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए गये[10] :—

1 चौहानों की हार को देखते हुए इस प्रदेश में अराजकता मिटाने का दायित्व सवखाप पंचायत के माननीय सदस्यों को निभाना चाहिए।

2 इस कार्य के लिये सशस्त्र जत्थे तैयार किये जायं जो विधर्मियों से स्वजनों की रक्षा कर सकें।

3 विवाह शादी के अवसर पर खर्चे कम किये जायें और वर-वधू की रक्षा के लिए सशस्त्र जत्थों में बारात भेजी जाए।

उपरोक्त तीनों प्रस्ताव इस बात के द्योतक हैं कि इस क्षत्रिय वीर संगठन ने आत्मरक्षा एवं आत्म सम्मान के लिए स्वयं अपने सदस्यों को साहसिक कदम उठाने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता को सही समय पर पहचाना। उन्होंने अपने राजा के पतन पर साहस नहीं खोया और नये सुलतानों से भी सुरक्षा की ज्यादा आशा नहीं रखी। बारात के साथ सशस्त्र जत्थों को भेजने की व्यवस्था को पंचायती संगठन ने उस समय की असुरक्षात्मक परिस्थिति में स्वीकार किया। इससे बारातियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई, जो आज भयानक रूप धारण कर चुकी है। स्वतन्त्र भारत में सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था हो चुकी है। अतः समय आ गया है कि पंचायत संगठनों को इस प्राचीन प्रथा को अब बन्द करवाने के लिए बढ़ चढ़ कर काय करना चाहिए।

शाहदरा—गाजियाबाद के मध्य-स्थान पर सम्वत् 1355 विक्रमी (1299 ई०) में हुई सर्व खाप पंचायत सभा में रोड़ों की उपस्थिति का स्पष्ट पता चलता है, जिसमें अलाउद्दीन खिलजी की प्रार्थना पर मंगोलों के क्रूर एवं भयानक आक्रमणों से देश की रक्षा के लिये 75,000 मल्ल योद्धाओं की एक विशाल सेना तैयार करने का निर्णय लिया गया। साथ ही क्षत्रिय वीरांगनाओं को भी इस सेना की सहायतार्थ तैयार करने का निर्णय लिया गया। शायद आज के गृह–रक्षी दल की भांति इन वीर देवियों ने मंगोल आक्रमण के समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस सेना की संख्या 28,000 थी और किरपी नामक रोड़ विरांगना इसकी सहायक सेनापति थीं।[11]

उपरोक्त सभा विक्रमी सं० 1355 (1299 ई०) में प्रथम मंगोल आक्रमण आरम्भ होने पर हुई थी। इसमें अन्य चार उप-सेनापतियों एवं परामर्शदाताओं में से चम्पत सिंह रोड़ भी था। स्पष्टतः देश-भक्तों से कंधे से कंधा मिलाकर रोड़ों ने मंगोलों के विरुद्ध 1299 से 1305 के मध्य हुए छः युद्धों में मातृभूमि की रक्षा के लिये अलाउद्दीन खिलजी के नेतृत्व में भाग लिया। शासक और देश-भक्त कृषक—सैनिकों के सम्मिलित प्रयास का ही फल था कि एक ओर लुटेरों को जन-धन की भारी हानि उठाते हुए मुंह की खानी पड़ी और दूसरी ओर देश की आजादी की रक्षा हुई।

उपरोक्त कृषक संगठन तथा दिल्ली सुल्तान के विदेशी आक्रमण के समय मिलकर शत्रु का सामना करने का यह कदापि अभिप्रायः नहीं लिया जाना चाहिए कि इन दोनों वर्गों (शासित और शासक) में सदैव सौहार्द्र पूर्ण सम्बन्ध रहे। इसके विपरीत दिल्ली के सैनिक—सामन्तवादी शोषक सुलतानों का कृषक लोग अक्सर विरोध करते रहते थे। यदा कदा जब सुलतान धार्मिक

ज्यादतियां करते थे तो कृषक, जिनमें रोड़ भी सम्मिलित थे, विद्रोह करने से भी नहीं चूकते थे। वे देश—धर्म व स्वाभिमान की रक्षा के लिये लड़ते रहे, मिटते रहै पर आत्म सर्म्पण के लिये तैयार नहीं हुए।

भारतवर्ष पर होने वाले विदेशी आक्रमणों को निष्फल करने में हरियाणवी वीरों ने सदैव अपने शासकों का पूरा साथ दिया चाहे आन्तरिक मामलों में वे उनकी नीतियों से पूर्णतया सहमत न होने के कारण समय-समय पर अपना विरोध प्रदर्शित करते रहते थे। परन्तु फिरोज तुगलक (1388—1414 ई०) के परवर्ती तुगलक सुल्तान नितान्त अयोग्य निकले। वे अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी एवं चरित्र-बल से च्युत लोगों के हाथों की कठपुतली हो गए थे, जिसके कारण विशाल दिल्ली साम्राज्य टूट कर बिखर गया। इस अराजकता की स्थिति का सामना करने के लिये हरियाणवी वीर क्षत्रियों का संगठन फिर हरकत में आया। परिस्थितियों को देखते हुए "सम्वत् 1455 विक्रमी (1399) में 'तिरपडादाह—दोगठ' के मध्य में सर्वखाप पंचायत का सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें 80 हजार मल्ल यौद्धाओं और 40 हजार वीरांगनाओं की विशाल सेना तैयार करने का प्रस्ताव पास किया गया। इस सेना में सहायक सेनापति का पद गंगू नामक रोड़ व्यक्ति को सौंपा गया।[12]

इसी समय (1398 ई०) में तैमूर के आक्रमण के रुप में देश पर एक नई विपत्ति आ गई। यह क्षत्रिय देश-भक्तों की परीक्षा का समय था। राजनीतिक दुर्बलता के कारण प्रशासनिक ढांचा लड़खड़ा रहा था और देश पतन की अवस्था की ओर तेजी से चला जा रहा था। ऐसे में आक्रमणकारी (मुसलमान) सिपाहियों का सामना करने के लिये, हरियाणवी यौद्धाओं और

और विरांगनाओं नै जो भी हथियार—लाठी, कुल्हाड़ा इत्यादि मिले लेकर अद्वितीय साहस का परिचय दिया। तैमूर पंजाब तथा राजस्थान के कुछ क्षेत्र जीत कर भटनेर (हनुमानगढ़ से) घग्घर नदी के साथ-साथ हरियाणा में प्रविष्ट हुआ। रानिया, सिरसा, फतेहाबाद, रज्जबपुर, अहरौनी, टौहाना तथा हिसार इत्यादि जाटों, अहिरों एवं अन्य खेतिहर लोगों के प्रबल विरोध के बावजूद भारी लूटपाट, आगजनी एवं हजारों लोगों का वध करते हुए विजयोन्मादी तैमूर करनाल में प्रविष्ट हुआ। कैथल, असन्ध, तुगलकपुर, सालवन आदि को बर्बाद करता हुआ 3 दिसम्बर 1398 को पानीपत में पहुँचा। मार्ग में जितने गांव पड़े, उन्हें उस बर्बर आक्रमणकारी ने उजाड़ दिया। पानीपत से लोग दिल्ली सरकार के आदेशानुसार नगर छोड़कर चले गए। तैमूर ने नगर को जी भर कर लूटा।"[13] पानीपत तथा अन्य निकटस्थ स्थानों से पर्याप्त अन्न तथा युद्ध-सामग्री एकत्रित करके तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया और तुगलक वंश के नाम मात्र शासक महमूद को पराजित कर दिया (16 दिसम्बर, 1398)। करनाल—असन्ध—पानीपत क्षेत्र में रोड़ों के गांव भी पड़ते थे। स्पष्ट है, उन्हें भी इस आक्रमण के भयानक अनुभवों का सामना करना पड़ा।

हरियाणा से होते हुए दिल्ली पहुंचने में तैमूर की आक्रमणकारी सेनाओं को लगभग एक महीने तक हरियाणा वासियों से एक-एक ईन्च भूमि के लिये लड़ना पड़ा। इस घटना का सटीक वर्णन करते हुए डा० के० सी० यादव लिखते हैं:

"इस अवधि में उसे तैमूर) निरन्तर हरियाणा वासियों के विरोध का सामना करना पड़ा। कभी-कभी तो दिन में दो बार उसे इनसे युद्ध करना पड़ता था। हरियाणा के हजारों लोग उससे लड़ते मारे गए। अफसोस की बात यह है कि जब

हरियाणा के निहत्थे लोग आक्रमणकारियों का सामना कर रहे थे, तो दिल्ली के सुलतान की सहायता मिलना तो दूर, उसने कहला भेजा कि तैमूर का विरोध मत करो, और अपने जीवन की सुरक्षा के लिए भाग जाओ। इन परिस्थितियों में बलिदान देकर भी हरियाणा के लोग कुछ न पा सके। तैमूर के जाने के पश्चात देश में फैली अराजकता का हरियाणा वासियों ने पूरा लाभ उठाया। वे हर क्षेत्र में स्वतन्त्र हो गए।"

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हरियाणा की वीर परिश्रमी और ताकतवार कृषक जातियों—जाट, रोड़, गूजर, अहीर आदि ने अधिक शक्तिशाली, भारी दल बल के स्वामियों का, अपने अधिकारों की प्राप्ति एवं रक्षा के लिए डटकर मुकाबला किया और अनेक बलिदान दिए। इन ग्रामीण सूरमाओं के कारनामों और इनके संगठन "सर्वखाप पंचायत, सौरम" की प्रसिद्धि देश के कोने-कोने में गूंजने लगी। रोड़ क्षत्रिय जाति भी इस संगठन की गतिविधियों में बढ़-चढ़ कर भाग लेती थीं। अतः उनकी सेवाएं भी देश-धर्म की रक्षा के लिए सेनाएं तैयार करने व परामर्श देने हेतु हरियाणा से दूर विजयनगर तथा मेवाड़ (राजस्थान) के शासकों ने सर्वखाप संगठन के माध्यम से प्राप्त कीं। इस संदर्भ में सौरम रिकार्ड्स से प्राप्त सामग्री से कुछ अंशों का सार उद्धृत है :

सम्वत् 1476 विक्रमी की बैशाख बदी दूज (मई 1419 ई०) को हरिद्वार में रामदेव जाट की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन देश की राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था का जायजा लेने के लिए किया गया, जिसमें सन्त हरिगिरि गुसाईं विजयनगर से आकर शामिल हुए थे। वे हरियाणावासी वीर--साहसी पहलवानों (मल्ल योद्धाओं) को देखकर बड़े प्रभावित हुए। जब उन्होंने विजयनगर वापिस जाकर वहां के शासक

और राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति एवं रक्षा के लिए अपनी अपनी जातियों के मल्ल योद्धाओं की सेवायें इस पंचायती संगठन को उपलब्ध करवाते थे। पंचायत संगठन भी योग्यता को ध्यान में रखते हुए सेनाओं का संचालन करने के लिए नेताओं का चुनाव करता था, जिसमें सम्बद्ध व्यक्ति की जाति का कोई महत्व नहीं होता था। जाट-बाहुल्य क्षेत्र एवं संगठन होते हुए भी अल्प-संख्यक रोड़ बिरादरी के नेताओं के हाथ में पंचायती योद्धाओं की कमान सौंपना इस बात का प्रतीक है कि तत्कालीन जातियों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति अत्यन्त सहनशील थी। वास्तव में, वे एक-दूसरे के इतने निकट थे कि कोई जातिगत भेद दिखाई ही नहीं देता था।

उपरोक्त विश्लेषण का यह अर्थ कदापि नहीं लिता जाना चाहिए कि मध्य कालीन हरियाणा में जाति-भेद नहीं था। जातिभेद निसंदेह रूप से था; परन्तु जाट, राजपूत, गूजर, रोड़, अहीर, सैनी, त्यागी (ब्राह्मण) इत्यादि कृषक जातियों के विभिन्न लोग बधु-बांधवों की तरह रहते हुए मुख्यतः कृषि एवं पशुपालन से अपनी आजिविका कमाते थे। कुछ राजपूत "अच्छे कृषक नहीं थे। इनके गांवों में सदैव अभाव ही रहता था। पर इतने पर भी पुराना 'गौरव' बरकरार रखने की चेष्टा करते थे। अहीर, जाट, रोड़, आदि के समान स्तर के होकर भी वे अपने को उनसे ऊंचा गिनते थे।'[23] परन्तु सामान्यतः राजपूत-कृषकों द्वारा पंचायती संगठन में समान स्तर पर अन्य जातियों के लोगों द्वारा की गई सेवाओं में भागीदारी निबाहने[30] के उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि सांमती ठिकानों की इन पर पकड़ पहले जैसी नहीं रही थी और वे अन्य जातियों से कटे हुए नहीं थे।

सामाजिक स्तर निर्धारित करने की कसौटी के रुप में हुक्के

का प्रयोग[31] और कच्ची-पक्की रसोई के सम्बन्ध के महत्व को आज भी स्वीकृत किया जाता है। उपरोक्त सभी "जातियां आपस में कच्ची—पक्की रसोई खा सकती थीं और इनका हुक्का पानी भी एक ही था।"[32] इससे तत्कालीन समाज में आज से छुआछूत के कम होने का प्रमाण मिलता है । पंचायती संगठन के तत्वाधान में गुरु गोविन्द सिंह के सम्मान में हरिद्वार में आयोजित सभा में अन्य जातियों के अतिरिक्त कोली, भंगी इत्यादि जातियों के लोगों की उपस्थिति एवं महत्वपूर्ण पदों के लिए चुनाव से कुछ 'ऊंची जातियों' के मिथ्याभिमान को चाहे चोट लगी हो, समाज में पंचायती संगठन की गरिमा अवश्य बढ़ी होगी। निश्चित रुप से, सामाजिक सौहार्द्र पूर्ण वातावरण में तात्कालिक हरियाणा बसता था। जिसके गांवों में सभी जातियों के सीधे-साधे नेक लोगों के सामाजिक स्तर व व्यवहार की उपरोक्त पृष्ठों में मोटे तौर पर एक झलक प्रस्तुत की गई है, जिसमें रोड़ों के सामाजिक जीवन के कुछ लक्षण भी देखने को मिलते हैं।

सन्दर्भ

1 देखिए, परिशिष्ट चार और पांच ।

2 के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास, पृ० 189 से उद्धृत ।

3 विलियम क्रुक, उपरोक्त, पृष्ठ 243—246 के अनुसार सहारनपुर जिले के निवासियों ने जनगणना अधिकारियों को बतलाया कि उनमें से कुछ के पूर्वज कैथल से इस क्षेत्र में आए थे। इसी प्रकार बिजनौर क्षेत्र के लोगों ने कहा कि उनके पूर्वज फतेहपुर-पुण्डरी (जिला करनाल) से आकर बसे थे।

4 व्यक्तिगत भेंट में व्यक्त उद्गार ।

5 इस सेना में रोड़ शामिल होने का कोई प्रमाण नहीं है। स्पष्टतः इस समय तक इस क्षेत्र में रोड़ों का आगमन नहीं हुआ था।

6 सौरम रिकार्ड्स ।

7 ददरोड़ के पुत्र कल्याण की औलाद बुन्देलखण्ड (झांसी) क्षेत्र में जा बसी थी। पृथ्वीराज चौहान की सेनाओं में सूरमा की हैसियत से पालहन राय रोड़ गांव बक्शिया (झांसी) भी उपस्थित था जिसका वर्णन भाट विवरण में मिलता है।

8 इन घटनाओं के विस्तृत् समालोचनात्मक विवरण के लिये देखिए, डा० के० सी० यादव कृत हरियाणा का इतिहास खण्ड 2, पृष्ठ 25—26

9 भारत का इतिहास, आगरा, 1984, पृष्ठ 33

10 सौरम रिकार्ड्स ।

11 उपरोक्त ।

12 सौरम रिकार्ड्स ।

13 डा० के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास, खण्ड दो, पृष्ठ 58.

14 उपरोक्त, पृष्ठ 58—59.

15 सौरम रिकार्ड्स ।

16 इनमें से पहला जत्था 1505 विक्रमी सम्वत् (1448 ई०) में गया था। परन्तु दूसरे जत्थे के प्रस्थान की तिथि रिकार्ड्स में सुपाठ्य नहीं है।

17 सौरम रिकार्ड्स ।

18 अबुल फजल की 'आईन' से ज्ञात होता है कि अकबर दुर्भिक्ष—पीड़ितों की कठिनाईयों को दूर करने का प्रबन्ध करता था।

19 उपरोक्त ।
20 सौरम रिकार्ड्स ।
21 सौरम रिकार्ड्स ।
22 सौरम रिकार्ड्स ।
23 डा० के० सी० यादव, उपरोक्त भाग दो.
24 हरिराम गुप्ता, स्टडीज इन दि लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ पंजाब, पेज 46; खाफी खां, मुन्तखाब—अल—लुबाब II, पृष्ठ 652—53
25 इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग VII, पृष्ठ 415.
26 डा० के० के० शर्मा, सहारनपुर संदर्भ, (1986), पृष्ठ 91.
27 सौरम रिकार्ड्स, (द्रष्टव्य सूरज—सुजान, नई दिल्ली दिसम्बर 1982, पृष्ठ 34—38)।
28 के० सी० यादव, उपरोक्त, भाग दो, पृष्ठ 173
29 डा० के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास, भाग दो, पृष्ठ 172.
30 सौरम रिकार्ड्स, पंचायत मिटिंग्स की कार्यवाही ।
31 दी गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग I, नई दिल्ली, पृष्ठ 508 "In North India, hukka smoking offers an index of caste—status. Castes which share, on occasions, a single hukka are equals."
32 डा० के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास, भाग दो, पृष्ठ, 171. डा० यादव के ही शब्दों में : "राजपूत अपने आपको कुछ ऊंचा स्तर का समझते थे और हुक्का पीते समय हुक्के की नलकी (नय) निकाल लेते थे।" (द्रष्टव्य, उपरोक्त पृष्ठ 188)

पांच

आधुनिक काल में रोड़

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक यद्यपि रोड़ भारत वष के इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ किसी—न—किसी रुप में जुड़े रहे हैं तथापि उनकी भूमिका को इतिहास के पृष्ठों में उचित स्थान दिलवाने के लिए गहन खोज की जानी है। विशेषकर, अंग्रेजों द्वारा 1803 में हरियाणा की भूमि पर पदार्पण करने के साथ इस क्षेत्र में बसने वाले लोगों के विषय में ऐतिहासिक जानकारी के स्रोतों में महती वृद्धि हो जाने के कारण, रोड़ों के विषय में भी सामग्री में निश्चित रुप से वृद्धि हुई है। लेकिन, आधुनिक काल के विषय में प्राप्त सामग्री का अभी बैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना है। अतः निम्नांकित पृष्ठों में हम इस क्षेत्र तथा जाति के इतिहास के विषय में मोटे तौर पर ग्राम्य जीवन तथा ग्राम-समुदायों पर

अंगरेजी सरकार के प्रभाव के परिपेक्ष में ही सामान्य बातों का वर्णन कर रहे हैं।

स्वशासन की भावना के अनुरुप हरियाणा वासियों ने 19वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के विरुद्ध जोरदर आवाजें उठाईं और सात-आठ साल के निरन्तर संघर्ष के पश्चात् ही अंगरेजों को इस क्षेत्र के नए शासकों के रुप में मान्यता दी। नई सरकार तथा सिक्खों के मध्य करनाल—कुरुक्षेत्र—जींद—सहारनपुर इत्यादि के क्षेत्र पर कब्जे के लिए हुए संघर्ष तथा अराजकतापूर्ण स्थिति का रोड़ों को भी सामना करना पड़ा। जब स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नष्ट किया जा रहा था तो भी ग्राम वासियों के सामाजिक एवं व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए मध्यकालीन युग की भांति पचायतों का महत्व बना रहा। 'ग्राम-विरादरी' या पंचायत में प्रत्येक परिवार के बड़े-बूढ़े उपस्थित होते थे। वे पवित्र समाज हित तथा परम्पराओं की रक्षा करते हुए स्वभावतः परस्पर विरोधी पार्टियों की गवाही की निष्पक्ष जांच करके ही अपना निर्णय देते थे। परिणाम स्वरुप, न्याय शीघ्र एवं सस्ता मिलता था। इस प्रक्रिया में झूठ और अन्याय की आशंका निर्मूल होती थी क्योंकि वादी—प्रतिवादियों तथा पंचों पर पवित्र सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ जनमत का भय भी होता था। अंग्रेजी शासन काल में यद्यपि हरियाणा सर्व खाप पंचायत धिरे-धिरे निष्क्रय होती चली गई तथापि 'ग्राम-बिरादरी' के सदस्यों का चुनाव सर्व-सम्मति से या बातचीत व समझौतों द्वारा सम्पन्न होता रहा। इस चुनाव प्रक्रिया के विषय में सर हरबर्ट रिजले का कथन है :

"जब ग्राम समुदाय एकत्रित होकर आपस में बात करते हैं, उनकी बातों से अन्त में एकमत का विकास हो जाता है और

वही सब (ग्रामवासियों) का मत होता है···इस प्रक्रिया को हम उसी तरह हाथ उठाकर सर्व-सम्मति से अथवा स्वीकारात्मक 'हां' द्वारा निर्वाचन कह सकते हैं जिस प्रकार प्राचीनकाल में यूनानी, जर्मन लोक संस्थाएं चुनी जाती थीं। यह संसार की प्राचीनतम चुनाव पद्धति है।"

उपरोक्त बिरादरी संघ में रोड़ कृषक भी अपने परम्परागत ढंग से कृषि करते हुए अपना जीवन यापन करते रहे। इस काल में किसानों से लगान/कर की वसूली सख्ती से की जाती थी। खाद्यान्नों की पैदावार बढ़ाने के लिये सरकार ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। ऊपर से अनाजों के दामों में निरन्तर गिरावट के कारण लोग टैक्स चुकाने के लिये गांव के साहूकार/महाजन की शरण लेने पर बाध्य हुए, जो ब्याज की ऊंचो दर वसूल करता था। एक तरफ सरकार की दमनकारी नीति और दूसरी तरफ साहूकार द्वारा असह्य शोषण – चक्की के दो पाटों के बीच किसान पिसता चला गया। इस स्थिति का सामना करते हुए रोड़ कृषक वर्ग भी सुनहले सपनों के इन्तजार में जीवन बसर करते चले गए।

विदेशी शासन की स्वार्थपूर्ण नीतियों के विरुद्ध जनता में गहरा असन्तोष व्यापक रुप से फैलना स्वाभाविक ही था। मेरठ, देहली, अम्बाला इत्यादि में 1857 की क्रान्ति के प्रस्फुटित होने के समाचार पर हरियाणा क्षेत्र के रोड़ भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की ज्वाला में कूद पड़े। उन्होंने अपने कृषक साथियों के सहयोग से डाक व्यवस्था भंग कर दी। अंग्रेजी व्यवस्था के विरुद्ध मारधाड़ और लूटमार में बढ़कर भाग लिया। उस समय की जन-क्रान्ति का सही स्वरुप हरियाणा क्षेत्र, विशेषकर कुरुक्षेत्र के समीपस्थ भाग में देखने को मिलता है जहां स्वयं किसान ही क्रान्ति के जनक व नेता बने हुए थे। किसानों ने

अंगरेजों का विरोध क्यों किया ? इसका उत्तर तात्कालिक उच्च अंग्रेज अधिकारी, राबर्टसन के शब्दों में उद्धृत है —"किसान अंग्रेजों के शासन से घृणा इसलिए करते हैं कि दुनिया के सबसे ज्यादा बेईमान साहूकार वर्ग को अंग्रेजी कानून ने मासूम व लापरवाह वर्ग के किसानों का खून चूसने की इजाजत दे दी है। मैंने यह अनुभव किया है कि हमसे सबसे अधिक घृणा छोटे-छोटे जमींदार वर्ग के किसान करते थे, जिनकी सम्पत्ति का अपहरण बनियों ने हमारी अदालतों के जरिये किया था।"[1]

लाडवा, पिपली, पेहवा, कौल, कैथल, पुण्डरी, अमीन, असन्ध, पानीपत इत्यादि परगनों के गांव-गांव में क्रान्तिकारी कृषकों ने अंग्रेजी शासन व्यवस्था भंग कर दी और अंग्रेजों को माल गुजारी देनी बन्द कर दी। किसानों द्वारा फिरंगियों और उनके आश्रित जमींदारों और महाजनों पर आक्रमण का जोरदार सिलसिला आरम्भ किया गया, जिससे वे आंतकित हो उठे। उन्होंने राजस्व और पुलिस अधिकारियों को अपने क्षेत्र से खदेड़ दिया। सरकार के वफादारों को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया और कुछ समय के लिये ब्रिटिश शासन के सभी चिह्न मिटा दिए।[2]

"करनाल परगने में जनता ने शत्रु के छक्के छुड़ा दिए। कप्तान ह्यूज के नेतृत्व में भेजी गई सेना से उन्होंने कदम-कदम पर जमकर युद्ध किए···अन्ततः ह्यूज को अपनी जान बचाने के लिए भागना पड़ा··पानीपत के स्थान पर··· बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सैकड़ों लोग मारे गए···(परन्तु) क्रान्ति की ज्वाला सारे क्षेत्र में किसी—न—किसी रुप में दिल्ली पतन तक जारी रही।"[3] परन्तु अंग्रेजी सरकार के कृपा-पात्र महाराजा पटियाला और जीन्द के राजा ने 15 और 17 मई को अपनी-अपनी सेनाएं क्रान्ति-कारियों से निपटने को भेज दीं तो

कुंजपुरा, नाभा और करनाल के शासक भी अपनी जी हुजूरी में पीछे न रहे। अगस्त माह में प्रथम पंजाब कैवेलरी भी मैदान में आ डटी। इस प्रकार हर सम्भव अत्याचार और विनाश के ताण्डव नृत्य के सामने, लगभग निरस्त्र किसान शक्ति कुचलने से न बच सकी। अनेक लोग तोपों के मुंह पर बांधकर उड़ा दिए गए और बहुतों को पेड़ों पर लटका कर फांसी दे दी गई।

दुर्भाग्यवश हमारे पास उन वीर रोड़ों के नामों को जानने का कोई साधन नहीं है, जो देश की आजादी के लिए लड़ते हुए शहीद हुए। फिर भी इनके वीरतापूर्ण कार्यो का उल्लेख स्वयं ही देश भक्ति और बलिदान का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिस पर कोई भी जाति गर्व से सिर ऊंचा किए बिना नहीं रह सकती।

हरियाणा वासियों पर इस जन क्रान्ति के बड़े दूरगामी प्रभाव पड़े। साम्राज्ञी विक्टोरिया ने हिन्दुस्तान के राजाओं एवं प्रजा के नाम उद्घोषणा में कहा : "मैदान--ए--जंग में उस बगावत को कुचल देने से हमारी ताकत का इजहार हो चुका है। अब उन लोगों के अपराध क्षमा करके, जो कि अब फरजे—अमल को लौटना पसन्द करें, हम अपनी मेहरबानी का इजहार करना चाहते हैं।" इस उद्घोषणा को क्रियान्वित करते हुए हरियाणा का शासन-सूत्र भी देश के अन्य भागों की तरह कम्पनी सरकार से हटकर सीधे ब्रिटिश साम्राज्ञी एवं पालिया-मेण्ट के हाथों में आ गया। हरियाणा क्षेत्र मुगल काल में दिल्ली सूबे का भाग था और कम्पनी सरकार के आधीन उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) का एक भाग था। अब 1858 के एक्ट 38 के अनुसार यह पंजाब के साथ मिला दिया गया। इस तरह अब प्रशासनिक आधार पर रोड़ जाति के लोग भी

प्राचीन विशाल हरियाणा के स्थान पर पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की व्यवस्था के आधीन आ गए।

1857 की घटनाओं के पश्चात इस क्षेत्र के लोगों पर अंग्रेजों का दमन चक्र और बढ़ गया। इसकी सजा के रुप में 20वीं शताब्दी के प्रथम् चरण तक भी हरियाणा वासियों के लिए सरकारी नौकरी के द्वार बन्द रहे। नहरों, सड़कों, स्वास्थ्य सेवाओं तथा शिक्षा की सुविधाओं का भी लगभग अभाव-सा बना रहा। अंग्रेजों ने भारतवासियों के हृदय में यह हीन भावना भरने का भरसक प्रयत्न किया कि भारत में कभी भी राष्ट्रीय एकता नहीं रही ; भारत का गौरवपूण इतिहास नहीं रहा और भारत की संस्कृति रूढ़िवाद एवं अन्ध विश्वास पर आधारित है। भारत सदा विदेशियों का गुलाम रहा है और आय लोग भी विदेशी आक्रमणकारी थे। लेकिन, 19वीं शताब्दी के शिक्षित, जागरुक और देशभक्तों ने जाति, रंग, धर्म के भेद मिटाकर भ्रातृभाव की भावना उत्पन्न करने, समस्त धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन करने तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका तैयार करने के उद्देश्य से जी जान से प्रयत्न करने आरम्भ किए। जिसके परिणाम-स्वरुप देश में नव-जागृति आई और तर्क की भावना का जन्म हुआ। हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जहां रोड़ बसते हैं, सामाजिक जागृति के अग्रदूत स्वामी दयानन्द सरस्वती कहे जा सकते हैं। उन्होंने एकेश्वरवाद, वेदों का महत्व, हवन, यज्ञ, मन्त्रोच्चारण का प्रचार किया और ब्राह्मणवाद, पुराणवाद, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अन्ध विश्वास, श्राद्ध, भूत-प्रेत आदि का जोरदार खण्डन किया। सन् 1867 के हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर महर्षि दयानन्द ने धर्म की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने हेतु "पाखण्ड-खण्डिनी पताका" फहराकर नव-जागरण का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ किया। कालान्तर में,

आर्य समाज ने "भारत को जगाकर बीसवीं सदी के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।" स्वामी जी के जीवन काल में ही आर्य समाज की स्थापना रुड़की (20 अगस्त 1878) तथा सहारनपुर (1879) में हो चुकी थी। रोहतक (1885), झज्जर (1891) शाहबाद मारकण्डा (1893) थानेश्वर–कुरुक्षेत्र (1894) तथा बाद में लाडवा, कैथल तथा पुण्डरी में भी इस संस्था की स्थापना लाला लजपतराय तथा उनके सहयोगियों ने कर दी। इन आर्य समाज केन्द्रों के सम्पर्क में आकर इस क्षेत्र के लोगों ने महत्वपूर्ण सामाजिक हित के कार्य किये, जिनमें आर्य मन्दिर, आर्य कन्या पाठशालाएं एवं गुरुकुलों इत्यादि की स्थापना प्रमुख थीं। इसके साथ ही सनातन धर्मी लोगों ने अपने भीतर आई बुराईयों को दूर करने और शिक्षा के प्रसार इत्यादि के रचनात्मक प्रयास किए। इस प्रकार समाज सुधार आन्दोलन के प्रवर्तक शनैः शनैः राष्ट्रीय जन-जागरण के प्रमुख नेता बन गए। उदाहरणतः नारी जागरण की आवश्यकता पर विशेष बल देते हुए गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द ने मई, 1909 में आर्य कन्या पाठशाला सहारनपुर की सभा में कहा : "ज्ञान भय का सबसे बड़ा उपचार है। स्त्रियों को ज्ञान दो और उन्हें भयमुक्त कर उनके अन्दर निर्भिकता प्रवाहित होने दो।"[4]

आरम्भ में आर्य समाज ने भी शहरों को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। शीघ्र ही वह समय आया जब कृषकों, जिनमें रोड़ भी शामिल थे, को कुम्भकरण की नींद से जगाने के भी जोरदार प्रयत्न आरम्भ हुए। सर्व श्री नौरंग सिंह (अहर), सिंह राम, (कुराना), भगत मान सिंह (सुताना), तुलसी राम प्रधान (कौल) तथा राम लाल (कुटेल) इत्यादि महानुभावों ने अज्ञानता, अनपढ़ता, रुढ़ीवादिता, अन्ध-विश्वास तथा दरिद्रता की मारी स्वजाती में नव-चेतना के बीज अंकुरित किए।

उपरोक्त लोगों के प्रयत्न से जातीय जागृति की भावना उसी तरह प्रकट हुई जैसे घने काले मेघों के मध्य बिजली की चमक से रोशनी पैदा हो गई हो। धिरे-धिरे पाश्चात्य शिक्षा प्राप्ति की ओर भी रोड़ ध्यान देने लगे और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी सक्रिय हुए। संयुक्त पंजाब विधान परिषद के लिए 1920 से 1936 के मध्य हुए किसी भी चुनाव में इस जाति के किसी भी सदस्य को प्रत्याशी बनाने का अवसर नहीं मिला। लेकिन इससे इन्हें राजनैतिक शिक्षा प्राप्त हुई। इन्होंने जातीय राजनैतिककरण का लाभ उठाते हुए 1937 में हरियाणा क्षेत्र के लिए निश्चित 33 निर्वाचन स्थानों में से, करनाल दक्षिण जनरल देहाती सीट से अनन्तराम को संयुक्त पंजाब विधान परिषद के लिए यूनियूनिस्ट पार्टी की टिकट पर चुनाव जीतवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लेकिन तात्कालिक स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्य प्रयत्नों में रोड़ों की भूमिका के विषय में अभी खोज की जानी है। स्वतन्त्रता के पश्चात् मुलतान सिह (कुटेल), भाग सिह (रसीना), चम्बेल सिह (अमीन), हुकम सिह (कुन्जपुरा), शिव राम वर्मा (झंझाड़ी), ईश्वर सिह (स्टौण्डी) तथा चन्दा सिह (बुटाना) विभिन्न क्षेत्रों से विधायक चुने गये हैं। वे मन्त्री, विधान सभा की विभिन्न समितियों के सदस्य तथा अन्य महत्वपूर्ण पदों पर बिराजमान रहे हैं। वर्तमान हरियाणा विधान सभा के ईश्वर सिह और चन्दा सिह सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर सिह, योजना बोर्ड, हरियाणा के डिप्टी चैयरमैन के पद पर भी आसीन हैं। देवी सिह (कुटेल) रणधीर सिह (अहर), अमर सिह (मोहाना), प्रो० भाग सिह आर्य (खेड़ी मटरवा), राम चन्द्र (खरकाली), अनन्त राम (रसीना), जागीर सिह (करनाल) इत्यादि भी राजनीति में सक्रिय हैं।

जिस प्रकार मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास में रौड़

जाति के लोगों ने ग्रामीण पंचायतों और हरियाणा सर्वखाप पंचायत, सौरम के तत्वाधान में गणतन्त्रात्मक तरीकों से कार्य करते हुए अपनी जाति के गौरव को चार चांद लगाये थे, उसी प्रकार स्वतन्त्रता के पश्चात जातीय संगठन एवं जागृति की आवश्यकता की पूर्ति हेतु एक मंच की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामस्वरुप, 15 सितम्बर 1959 को निम्नलिखित व्यक्तियों ने सोसायटीज एक्ट XXI ऑफ 1860 के अन्तंगत मैमोरंडम ऑफ एसोसिएशन ऑफ रोड़ महा सभा करनाल, पर हस्ताक्षर किये—शिव राम वर्मा प्रेजीडेन्ट, (झंझाड़ी), हुकम सिह, सीनियर वाइस प्रेजीडेन्ट (कुंजपुरा), चन्दा सिह, जूनियर वाइस प्रेजीडेन्ट (बुटाना), वैद्य रति राम, सैक्रेट्री (करनाल), साधुराम (शामगढ़), हिरदे राम (करनाल), राम सिह (करनाल), धन सिह (भैनी खुर्द), ईश्वर सिह (जनता स्कूल कौल), अनन्त राम (फार्म मिर्जापुर), भगत मान सिह (सुताना), चम्बेल सिह (अमीन), मुलतान सिह (कुटेल), भाग सिह (रसीना), महिन्द्र सिह (बसतली), बलवन्त सिह (बसतली), नेत राम (बलड़ी), नन्द राम (सांच) हरकेश सिह (करनाल), तारा चन्द (कौल), फूला राम (दादूपुर), भुला राम (आहूं)। वतमान समय में इस सभा के भीम सिह (मोरखी) प्रधान तथा शमशेर सिह (पबनावा) सचिव हैं।

इस प्रकार रोड़ महा सभा (रजिस्टर्ड), करनाल की स्थापना हुई। इसकी सदस्यता रोड़ जाति के सभी व्यक्तियों के लिए, निश्चित सदस्यता फीस देने पर खुली है। इसके निम्न-लिखित उद्देश्य निश्चित किये गये—

1 रोड़ समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्तर को बढ़ाना।

2 अपने उद्दश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षण संस्थायें स्थापित करना और पहले से स्थापित संस्थाओं को सहायता प्रदान करना।

3 अपने प्रयोग के लिये सभा भवनों, विश्राम गृहों, धर्मशालाओं और अन्य भवनों का निर्माण करना।

4 विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा पूरी करने और शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये छात्रवृतियां प्रदान करना।

5 लोगों के उत्थान के लिये व्याख्याताओं और धर्म प्रचारकों की व्यबस्था करना।

6 अपनी उप-सभायें स्थापित करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये रोड़ महासभा निरन्तर यथासामर्थ्य प्रयत्नशील है। सभा ने रोड़ भवन करनाल तथा रोड़ धर्मशाला हरिद्वार स्थापित करके लोक-हितकारी कार्यों की दिशा में सराहनीय योगदान दिया है। तीर्थ-यात्रियों की सुविधा के लिये कुरुक्षेत्र में भी एक विशाल धर्मशाला बनाने का कार्य बड़ी तेजी से चल रहा है।

लम्बे समय तक शिक्षा के क्षेत्र में रोड़ जाति काफी पिछड़ी हुई रही है। आधुनिक युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस जाति के लोगों ने लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा की ओर कुछ ध्यान देना आरम्भ किया है। रोड़ महा सभा तथा इस जाति के अनेक व्यक्तियों के सद्प्रयासों के फल स्वरुप जनता सीनियर सैकण्डरी स्कूल, कौल; कृषि महा विद्यालय, कौल;[5] जनता महा विद्यालय, कौल; कन्या महाविद्यालय, पुण्डरी, कन्या

गुरुकुल, अन्जन थली, आर्य नेशनल हाई स्कूल, मोहाना,[6] आर्य नैशनल कन्या हाई स्कूल, मोहाना' इत्यादि शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई है।

उपरोक्त शिक्षण संस्थाओं और सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न स्कूलों, कालेजों व्यावसायिक प्रशिक्षण-संस्थाओं, पोलिटैक्नीक्स तथा इन्जीनियरिंग कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठाते हुए अनेक युवक युवतियां शिक्षा प्राप्त कर सार्वजनिक तथा प्रशासनिक सेवाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में डा० रणधीर सिंह महला (सांच) हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार में प्रौफेसर के पद पर शोभायमान हैं और अन्य अनेक व्यक्ति रीडर, प्रवक्ता, डी० पी० ई०, अध्यापक इत्यादि पदों पर कार्यरत हैं। रोड़ जाति के अनेक अफसर तथा जवान सेना तथा पुलिस विभाग में भर्ती होकर देश व समाज की सेवा कर रहे हैं। कर्नल सुनहरा सिंह (मोहाना), कर्नल देई चन्द (जिआणी). कर्नल रामचन्द्र (रसीना) तथा निहाल सिंह रिटायर्ड एस०पी० (लोहारी) के नाम उच्च-पदासीन अधिकारियों में आते हैं।

प्रशासनिक सेवाओं में रोड़ जाति से सम्बद्ध महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत अधिकारियों में महा सिंह, IAS, रणधीर सिंह (रिटायर्ड) HCS, विरेन्द्र वर्मा, HCS, गुलाब सिंह PCS, विरेन्द्र सिंह HCS इत्यादि हैं।

खेलों के क्षेत्र में इस जाति के युवकों की विशेष रुचि है। विशेष तौर पर वालीबाल तथा बास्केटबाल में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। बलवन्त सिंह (कौल) लगातार कई वर्षों तक भारतीय वालीबाल टीम के कप्तान रहे हैं। उन्हें अर्जुन एवार्ड से भी सम्मानित किया गया है। इनके

अतिरिक्त इन्हीं के छोटे भाई मेहर सिंह (कौल) तथा दलेल सिंह (अमीन) वर्तमान समय में भारतीय वालीबाल टीम के सदस्य हैं तथा पिछले एशियाई खेलों में इन्हें अपनी कला प्रदर्शित करने का मौका मिला। अजमेर सिंह (रुकनपुर) वर्तमान समय में भारतीय बास्केटबाल टीम के सदस्य हैं । देव केतू (मैहमदपुर) योग विद्या में पारंगत हैं।

आज भी इस जाति के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है। इसके साथ-साथ कुछ लोग वकालत, डाक्टरी, व्यापार तथा वाणिज्य में भी लगे हुए हैं।

संदर्भ

1 एच० डी० रावर्टसन, डिस्ट्रिक्ट ड्यूटीज ड्यूरिंग दि रिवोल्ट ऑफ इण्डिया इन 1857 (लन्दन, 1859) पृष्ठ 135.

2 बाल कृष्ण मुजतर, कुरुक्षेत्र पोलिटिकल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ 94—95,

3 डा० के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास, खण्ड तीन, पृष्ठ 84—85.

4 द्रष्टव्य, डा० के० के० शर्मा, सहारनपुर सन्दर्भ, पृष्ठ, 120—127 तथा डा० के० सी० यादव, हरियाणा का इतिहास भाग 3, पृष्ठ 123.

5 कृषि महाविद्यालय, कौल अब हरियाणा कृषि विश्व-विद्यालय, हिसार के अन्तर्गत है ।

6 अब आर्य नैशनल हाई स्कूल मोहाना का नियन्त्रण सरकार ने ले लिया है ।
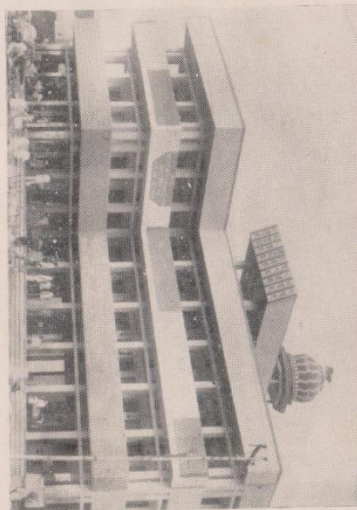
रोड़ भवन, करनाल
(रोड़ महासभा के सौजन्य से)

रोड़ धर्मशाला. कुरुक्षेत्र

(रोड़ महासभा के सौजन्य से)
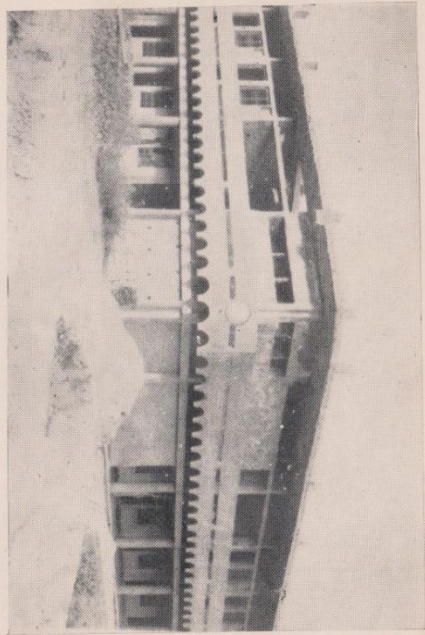
रोड़ धर्मशाला, हरिद्वार
(रोड़ महासभा के सौजन्य से)

छः

सिंहावलोकन

उपरोक्त अवतरणों में लगभग महाभारत काल से लेकर आधुनिक काल तक के रोड़ इतिहास की प्रमुख विशेषताओं को परिचिन्हित करने का एक प्रयास किया गया है । इन दोनों कालों की मध्य अवधि स्पन्दनभूत घटनाओं से परिपूरित है। इसमें, प्राचीनकाल में, जहां क्षत्रिय वर्ण की एक शाखा के रुप में रोड़ शासक वंश का उत्कर्ष एवं सन्निपात देखा गया वहीं रूरू, तिस्मान, धज, खंगण, और ददरोड़ आदि विलक्षण व्यक्ति राजनीति के रंगमंच पर अवतरित हुए हैं। यद्यपि इस वंश के विषय में सामग्री कम मात्रा में प्राप्य होने के कारण विवादों की स्वयं हेतु कारक बनी हुई है तथापि हमने इन वादों-प्रवादों की सारभूत तथ्यों के केवल यथोचित रुपों पर बल देते हुए विचाराधीन अवधि की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की है। जिसका सार

यह निकलता है कि इस वंश का एक क्षेत्रिय-शक्ति के रुप में कसौन्दीगढ़. खेड़ागढ़, तिस्मानगढ़, कगरौल और बादलगढ़ इत्यादि स्थानों पर लम्बे समय तक बोलबाला रहा है। किन्तु, शायद महोबे के शासक के साथ हुए प्रचण्ड युद्ध के आघात से, भारत के राजनीतिक क्षितिज पर पूर्व मध्यकाल में (सल्तनत शासन की स्थापना होने से पूर्व ही) यह वंश भी अपने पैतृक सत्ता-केद्रों से देखते-ही-देखते उखाड़ दिया गया।

शासन-सत्ता काल में रोड़ वंश के शासकों ने आत्मरक्षा के लिए किले-बन्दी से युक्त सुन्दर भवनों की स्थापना की। शायद. उनके सभी नगर प्राचीरों से घिरे होते थे। उनके मकान विशाल और आकषक होते थे जो बाहर–भीतर सुन्दर रंगे-पुते होते थे। साधारण रोड़ों तथा वहां की जनता के विषय में अभी जानकारी प्राप्त की जानी है। फिर भी, इस क्षेत्रिय-शासक वंश के लोगों द्वारा शिल्प कलाओं का अपने भवनों को सजाने के लिए प्रयोग करने के उदाहरणों से[1] यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गृह-निर्माण, धातुकर्म इत्यादि पेशे ग्रहण करने वालों को आर्थिक असुविधा नहीं होती होगी।

कगरोल के स्थान से सिक्के मिलने[2] का यह अर्थ लिया जा सकता है कि वाणिज्य और व्यापार में, क्रय-विक्रय का माध्यम रोड़ शासकों द्वारा जारी किए गए सिक्के रहे होंगे। साथ ही उपरोक्त स्थान से प्राप्त नारी की एक आकृति, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि उनका जीवन सादा और अकृत्रिम था और वे सार्वजनिक कार्यों में भी अपना सहकार देती थीं।

प्राचीन रोड़ शासक-वंश के वंश-वृक्ष पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि यह सत्ताधारी वंश था तथापि इस वंश के लोगों को अपनी वृति और निवास स्थान चुनने की

पूरी छूट थी। राजा धज के पुत्रों, तक्षक द्वारा लखनऊ की तरफ जाकर वाणिज्यक पेशा अपनाना, प्रश्न जीत द्वारा जोग धारण करना तथा ददरोड़ के पुत्र हट्टू द्वारा सिरकीबन्द सपेरों का व्यवसाय धारण करना दूसरों के पेशे ग्रहण करने के स्पष्ट उदाहरण माने जा सकते हैं। इससे यह भी प्रामाणित होता है कि इस प्राचीन राजवंश के सदस्यों ने समय-समय पर अपने व्यवसाय बदलने हेतु तथा आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में व्याप्त रुकावटों को तोड़ने हेतु क्रान्तिकारी कदम उठाए।

पूर्व मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास में जिस समय रोड़ों के भाग लेने के प्रमाण मिलने आरम्भ होते हैं, उस समय उनमें से कुछ तात्कालिक शासकों के अधीन जागीरदार बने मिलते हैं। परन्तु, मध्यकाल के इतिहास में इन जागीरदारों की संख्या व महत्त्व सीमित ही रहा लगता है, क्योंकि तरावड़ी के दूसरे युद्ध (1192 ई०) के पश्चात रोड़ों का इतिहास मुख्यतः ग्राम-व्यवस्था का इतिहास है। सलतनत काल, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल में ग्राम अर्थ-व्यवस्था मुख्यतः भूमि के स्वतत्व के आधार पर खड़ी थी। इस क्षेत्र की अन्य जातियों की भांति रोड़ कृषक भी अपने खेत का स्वामी था। परन्तु, गांव की परिषद् अथवा पंचायत का सदस्य होने के कारण उस पर इस संस्था का भी नियन्त्रण रहा होगा। यही पंचायत संकट से रक्षा और शान्ति के कार्यों में उसकी सहायता करती थी। इन ग्राम पंचायतों पर क्षेत्रिय पंचायत संगठन का नियन्त्रण होता था, जो इस क्षेत्र पर ब्रिटिश शासन की स्थापना तक प्रभावशाली ढंग से रहा। इस काल में रोड़ों तथा जाटों का चोली-दामन का सम्बद्ध रहा। इन्होंने अन्य जातियों के साथ ही यथासामर्थ्य पंचायती कार्य-वाहियों में भाग लिया और आवश्यकता पड़ने पर बलिदान देकर इतिहास में अपने लिए स्थान बनाया।

ब्रिटिश सत्ता के उदय के साथ सरकार द्वारा न्यायालयों की स्थापना और अर्थतन्त्र में आए क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण प्राचीन समाज व्यवस्था का ढांचा चरमरा गया। कालान्तर में आम कृषकों के अधिकार में खेतों के हिस्से छोटे होते चले गए। यद्यपि बड़े खेतों का पूर्णतः अभाव न था[3] परन्तु बड़े खेतों पर बड़े-बड़े जमींदारों का अधिकार था जो श्रमिकों या बटाई-दारों से अपने खेत जुतवाते थे। यद्यपि हरियाणा-उत्तर प्रदेश क्षेत्र में रोड़ों के जोतों के आकार के विषय में निश्चित जानकारी अभी प्राप्त की जानी है फिर भी, ऐसा आभासित होता है कि जिन रोड़ परिवारों में जनसंख्या ज्यादा हो गई उनके कृषक परिवारों में 'भाई-चारे के सिद्धान्तानुसार अतीत में मिली जोतों का आकार' कम होता चला गया। जिसके कारण उन्हें मुजारों के रुप में भी कृषि कार्य करना पड़ता था। अपनी जीवन-वृति के लिए वे कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में भी भाग लेने लगे[4]।

वर्तमान शताब्दी में रोड़ जाति ने राष्ट्रीय जीवनधारा में शामिल होकर प्रगति का मार्ग अपनाया है और विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपलब्धियों की छाप डाली है। परन्तु सामान्यतः कृषक रोड़ अभी भी रूढ़िवादी हैं। शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं के क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। जातीय संगठन के सामूहिक प्रयासों में व्यक्तिगत भेदभाव, द्वेष तथा शिथिलता भी यत्र-तत्र सहज ही दृष्टिगोचर होती है। समय की मांग है कि जातीय संगठन को और अधिक विस्तृत एवं सुदृढ़ तथा गतिशील बनाने हेतु इसके तत्वाधान में गणतन्त्रात्मक उप-समितियों व उप-सभाओं का गठन किया जाए, जिनमें से कुछ का रोड़ महासभा के संविधान में भी स्पष्ट प्रावधान है।

"झलक" यदि रोड़ बिरादरी के भाईयों के हृदय में जाति,

समाज और देश प्रेम की ज्योति जागृत और सर्वजनिक कार्यों में सामुहिक प्रयत्नों की प्रेरणा उत्पन्न करती है तो निश्चय ही इसके पटाक्षेप में छिपा उद्देश्य सफल माना जाएगा।

सन्दर्भ

1 प्राचीन भग्नावशेषों के विषय में देखिए, परिशिष्ट-तीन।

2 उपरोक्त. इन सिक्कों के विषय में विस्तृत खोज की आवश्यकता है ताकि रोड़ शासकों का काल निर्धारण करने के साथ-साथ सिक्कों पर छपे विभिन्न चिन्हों की मदद से अन्य महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सके।

3 एच० लकवर्ट (दि वेल्थ एण्ड वेलफेयर ऑफ दि पंजाब, लाहौर, 1936, पृष्ठ 166) लिखते हैं कि पंजाब में 58.3 प्रतिशत कृषकों के पास केवल 12.1 प्रतिशत भूमि थी, जबकि 15.5 प्रतिशत कृषकों के पास 61.3 प्रतिशत और 26.2 प्रतिशत के पास 26.6 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि थी. (दृष्टव्य, पंजाब पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट, जिल्द-X, पटियाला, पृष्ठ 147-48).

4 विस्तृत विवरण के लिए दृष्टव्य, परिशिष्ट एक और दो.

एक
परिशिष्ट

(जनगणना विभाग द्वारा हरियाणा में बसे रोड़ों से सम्बद्ध 19वीं शदी में एकत्रित सूचना के आधार पर डेन्जिल इब्बेट्सन द्वारा तैयार की गईं पुस्तक के अंश)

The real seat of the Punjab Rors is in the great Dhak Jungles of South of Thanesar on the borders of the Karnal and Ambala Districts where they hold a chaurasi, nominally of eighty four villages of which the village of Amin, where the Pandavas arranged their forces before their last fight with the Kauravas, is their head village. But the Rors have spread down the western Jammuna Canal into the lower parts of Karnal and into Jind in considerable numbers. They are fine stalwart men of very much the same type as the Jats, whom they almost equal as husband-men, their women also working in the fields. They are more peaceful and less grasping in their habits than the Jats, and are consequently readily admitted as tenants...of their origin, I can say nothing certain. They have

the same story as the Aroras, of their having been Rajputs who escaped the fury of Parsu Ram by stating that their caste was Aur or "another". The Aroras are often called Roras in the east of Punjab; yet I can hardly believe that the frank and stalwart Ror is of the same origin as the Arora. The Amin men say that they came from Sambhal in Moradabad. But this may be only to connect themselves with their neighbours the Chauhan Rajputs, who certainly came from there, but almost all the Ror seem alike point to Badli in Jhajjar Tehsil of Rohtak as their immediate place of origin, though some of them say they came from Rajputana and their social status is identical with that of the Jats and they practice Karewa or widow marriage, though only they say, within the caste.

...But even the marriage ceremony and other social customs retained by the Rors impress upon their clear Indian origin...Socially the Ror occupies a position which is shared by the Jat, the Gujar and the Ahir, all four eating and smoking together. He is far below the Rajput, from the simple fact that he practises widow marriage...(with due acknowledgement the excerpts taken from 'Races Castes and Tribes of the people of Panjab' 1981 Edition).

दो
परिशिष्ट

(1891 की जनगणना के समय उत्तर-प्रदेश में बसे रोड़ों के विषय में एकत्रित सूचना के आधार पर तैयार की कई विलियम क्रुक की पुस्तक के अंश)

In Saharanpur the Rors claim to have been created at Kaithal by Shri Krishna in the war of Mahabharat. Their marriage ceremonies resemble those of Jats and Gujars; they permit widow marriage, and the levirate is practically compulsory. They eat mutton, pork, and venison, and drink spirits. It is said that they will eat kachchi and pakki and drink and smoke with Jats and Gujars.

From an account of the Rors of Bijnor supplied by the district Officer, it appears that the tribal tradition of their origin is that when Rama Chandra severed his connection with Sita, she was pregnant and went into the Jungle under the protection of Rishi Valmiki; she bore a son there, who was named Lawa and one day,

when she was leaving the house, she put the child in charge of the Rishi. The child followed his mother, and the Rishi missing him and supposing him to be dead, constructed another child out of blish of Kusa grass, when Sita returned and saw the other child, she asked what it all meant. The Rishi said, "Rora-phora" (apparently 'this useless thing') "is also your son." Hence they were called Rors.

They are supposed to have emigrated to Bijnor some four centuries ago from a place called Fatehpur Pundri in the Karnal Distt.. half this village was owned by the Rors and half by a colony of Sayyids. The Sayyids quarrelled with the Rors, who were forced to emigrate under their leader Mahi Chand. By another story they were originally Tomar Rajputs of Delhi, which they were forced to leave after the conquest of their tribe. By a third account, their emigration from Delhi took place in the time of Aurangzeb.

They marry and perform their other family ceremonies in the usual manner common to respectable Hindus. Widow can marry again, and the levirate, though permissible, is not compulsory on the widow. There is regular form of divorce, but a wife detected in adultery is expelled from the tribe by the decree of the

tribal council and can not subsequently (even) on payment of a penalty be readmitted to caste rights.

The Chief Occupation is agriculture, to which they add the making of hemp matting and twine (tat, sutli).

They eat mutton, goats flesh and fowls. They will not eat beef, monkeys or vermin. They will not eat kachchi cooked by any caste but their own. They will smoke with Jats and Gujjars and eat pakki cooked by them or any supperior caste.

(With due acknowledgement, excerpts taken from 'Tribes and castes of the North-Western Provinces and Oudh', Calcutta, 1896).

तीन
परिशिष्ट

(With due acknowledgement excerpts taken from 'Archaeological Survey of India Report for the year 1871-72, Vol IV, Varanasi 1966).

KHERAGARH

Kheragarh is situated about twenty-four miles to the south of Agra, and about eight miles to the west of the Gwalior Road, on the banks of the Ban Ganga river. It is a large village, or small town, standing on a large and ancient Khera.

About 300 or 400 feet to the north side of Kheragarh there is an old Tila in which ancient sculptures are often found; and there is another Tila, called "Taisu Tila," about 500 feet to the east side of Kheragarh, in which ancient sculptures have also frequently been found. There are the remains of a mud fort at Kheragarh is said to have been built on the site of an ancient fort built of brick, which is the origin of the word "garh" in the name of "Kheragarh."

"KHANGAR ROR," "KAGA ROR," OR "KAGAROLL"

Kagaroll is situated about three kos this side of Kheragarh, and about eighteen miles from Agra. It is a very ancient place, and the present village stands on an ancient Tila, composed of the debris of an ancient fort. There are the remains of a very strong and thick wall which runs through below the western part of the village of Kagaroll. This wall is composed of huge blocks of red sandstone, some of them beautifully carved. A great portion of this wall lies still buried under the earth of the old Tila on which the village of Kagaroll stands; but another portion of the wall which extended beyond the Tila had been almost entirely dug up by the peasantry, until at length they began to quarrel about their respective right to the

materials. There is no wall now standing isolated by itself.

I find, by enquiries made of the inhabitants of the place, that the statement which recently appeared in the Delhi Gazette is quite true so far as, that the ancient fort buried under this place was actually founded by a "Raja Ror," who is said to have been the son of "Khangar."

There is a tradition preserved in the neighbourhood about a "white crow" or kag, in consequence of the appearance of which, as an omen of augury, Raja Ror built a fort here, and from which circumstance it was called "Kaga Ror," now corrupted to "Kagaroll." But to my mind the name of the fort is evidently derived from the combined names of Raja Khangar and his son Raja Ror, which would form the name of Khangar Ror, which in time might easily have been corrupted to Khangar-Roll or Kagaroll. It must also be remembered that there is a tribe of Rajputs* called "Rora."

It seems that there are many remains frequently found, or dug up at Kagaroll, such as sculptures, images, old coins, &c.

Two trustworthy men whom I lately sent there to explore the place brought me the

*Or perhaps more correctly, I should say—"there is a division of the Kshatriya race called Rora."

following things, which had been dug up at Kagaroll* :—

1. An image of a warrior in yellowish sandstone; present height about 13 inches; but as it has lost the lower part of the right leg from the ankle and the lower part of the left leg from below the knee, its original height was probably about 1 foot 4 inches. It is a very boldly sculptured figure, and the features of the face are fine and manly, and of the handsomest Hindu type. The warrior has his right knee raised; on his right arm he presents a shield in defence and in his left hand he brandishes a straight sword of huge dimensions over his head. In a belt round his waist he wears a dagger with a cross-shaped hilt at his left side The hair of the head is full, but drawn back in straight lines on the head. The figure is naked, with the exception of a cloth round the loins, a belt round the waist, and a triple necklace round the neck It is evidently the figure of a warrior of great strength, probably of some ancient hero. I should not wonder if this were a figure of Raja Ror himself.

2. A small female figure, carved in relief, in a kneeling or sitting position.

*They said, however, that "there were rumours other large and heavy images and other sculptures lying about which they were unable to bring away !"

3. A small figure, in white sandsstone, of a bull, springing forward in great terror, with the fore legs raised, and attacked from behind by either a leopard or a tiger or a lion, which has got hold of the bull's tail in its mouth. Behind the bull's fore-legs a man's leg and foot appear, but the upper part of this human figure has been broken off, and on the top of the back of the bull there are the remains of two human feet of much smaller dimensions than the other.

4. The remains of a small elephant or a bull in steatite.

5. Two very small and curious figures carved in some kind of greyish-black stone, one of which is like an elephant, but with a very long conical-shaped human-like face. Underneath its belly there is a young one sucking at its teats. The other is a small sitting figure, probably of some divinity, with a very absurd physiognomy.

A few coins were also brought to me from Kagaroll, all of which were either very much defaced or of no importance, with the exception of one which I can hardly call a coin, but which is a thin dice of copper or mixed metal, one side of which is covered with a representation of a circular rayed symbol, resembling a chakra or wheel, and the other side appears to be blank.

I hope. however, to obtain more coins from

toat locality, as the inhabitants of the place say that a great many coins, as well as images and other sculptures is stone, are found there.

THE KASSAUNDI GARHI...

(Page 208)....The village or small town of Kassaundi is situated about eight and a half to nine miles distant, south-east from Toondla.. it had been one great capital city defended by a series of forts; and this is by common consent asserted by the natives to have been founded by "Raja Gaj." ....In and around this neighbourhood the remains of the rest of the "Fifty-two Forts" are said to exist. Some years ago, several of these forts were still standing in a partly entire state, but the villagers and country people genrally have gradually demolished the walls; and I believe that when the Railway was first being constructed, the country people sold a large amount of the materials, of which these forts were constructed, to the Railway authorities and contractors, the Railways people being probably utterly unaware as to whence the materials really came from. If, however, the Railway people got any of the materials for use, of which these forts were constructed, they must have been considerably superior to any materials now in use with the Public Works Department !...the bricks found...may at least be upwards of two feet or more in length and about

eight inches in thickness. These are bricks from old foundations. The bricks which belonged to the upper portions of the walls appear to be about the same size as those I found at the Aundha Khera and Surajpur, namely, about I foot 3 inches in length by about 4 inches in thickness. Now bricks of such a size as this must be very ancient indeed !....As I said before, according to the traditions of that part of the country, Kassaundi Garhi or at least the old razed fortresses in its neighbourhood, were founded by "Raja Gaj!" But which Raja Gaj ? is the question which at once occurs to one ! Unfortunately, there were three or four ancient Rajas of that name, for instance—

1. Raja Gaja of the Bhatti tribe, B.C. 94 (see genealogy of the Raos of Jesalmir), who had a son called salvahan.
2. Gardabharupa, vulgarly called "Gadh," "Gadhya," or "Gaj," the son of Sadhroshana or Sadasva-sena, of Malwa, who is supposed by some also to have been called "Vasudeva," and the father of Vikramaditya I, —B. C. 91.
3. Raja Gaj, the founder of Gajni and the son of Subhava or Subhaga (Quaere,—Subhagasena?), —who, some accounts say, was slain in the year 72 after Vikramaditya, that is, 72 years after B.C. 75, which is equal to B.C. 3. Which of these then was the founder of Kassaundi Garhi ?

चार

परिशिष्ट

प्राचीन रोड़–वंश वृक्षावलो

भाटों द्वारा प्रदत्त सामग्री के अनुसार प्रयागराज (इलाहाबाद) के शासक ययाती के वंशज दुरदान, जिन्होंने खटकानगरी की स्थापना की थी, से 26 पीढ़ियां गुजरने पर रोड़ वंश के संस्थापक राजा रूरू हुए, जो हस्तिनापुर के शासक राजा कुरू के समकालीन थे। नीचे रूरू से आगे रोड़-बंश की वृक्षावली प्रस्तुत है :

रोड़-वंश वृक्षावली

28 रूरू
|
29 तालमदेव
|
30 बतीहोत्र
|
31 सहदेव
|
32 परुरिख
|

33 मुकनदेव | तालनदेव, | देवापी
|
34 मलदेव
|
35 अजयदेव
|
36 विजयदेव
|

37 सारंग देव
|
38 जुजरदेव
|
39 राजदेव
|
40 भंवररिख
|
41 इन्दरजीत
|
42 अनादिदेव
|
43 नरदेव
|
44 हृदयरिख
|
45 महेन्द्ररिख
|
46 सुगट
|
47 बलदेव/बालदेव
|
48 **बालनदेव**
|
49 चन्द्रमणी
|
50 हरिमन
|

51 चिन्तामन
|
52 देवमन
|
53 अभयमन
|
54 शमभून
|
55 ऋषिमन
|
56 चपलमन
|
57 धर्मसेन
|
58 **तिसमान**
|
59 इन्द्रमन
|
60 **धज उर्फ रोड़ कुमार**
|
61 कुणक/कुनक
|
62 **रुड़क**
|
63 हड़क
|
64 देवानिक
|

65 अनहीन
|
66 परिपत
|
67 बलशाह
|
68 विजयभान
|
69 **खंगण/खंगड़**
|
70 ब्रहदर्थ
|
71 हरअंश
|
72 ब्रहदथ ?
|
73 इस्मान/इशमान
|
74 श्रीधर
|
75 मोहरी
|
76 प्रसन्नकेत
|
77 अमीरखंण
|
78 महासैन
|

79 ब्रहधौल
|
80 हरिकिर्त
|
81 सोम
|
82 मित्रवान
|
83 पुष्यपात
|
84 सुदाव
|
85 बिदीरख
|
86 नहकमान
|
87 मंगलमित्र
|
88 सूरत
|
89 पुष्करकेत
|
90 अन्तरकेत
|
91 सुतजय
|
92 ब्रहध्वज
|

93 बाहूक
|
94 कंषजयी
|
95 कगनिष
|
96 कपिश
|
97 सुमन्त्र
|
98 लिगलाब
|
99 मनसजीत
|
100 सुन्दरकेत
|
101 **ददरोड़**
?
?
?

पांच

परिशिष्ट

(लेखक सुलतान सिह् तथा देशराज द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थ से राजा रूरू से ददरोड़ तक का इतिहास साभार संकलित)

राजा रूरू खटकानगरी के राजा थे, जो हस्तिनापुर के शासक राजा कुरू के समकालीन थे। वे राजा कुरू को ग्रपना धर्म पिता मानते थे ग्रौर उन्हें किसी 'श्राप' से मुक्ति दिलवाने हेतु धर्मक्षेत्र (कुरुक्षेत्र) के प्रसिद्ध तालाब में स्नान करवाके ले गए थे। इसी राजा रूरू ने क्षत्रिय जाति के स्थान पर, परसराम के समय में जात पलटी करी और वह रोरवंशी कहलवाया। अब लोग इस भाषा में रोड़ कहते हैं।

राजा रूरू की रानी कलावती चमन ऋषि की पुत्री थी। इनके पुत्र तालमदेव थे उनकी रानी ग्रात्मादेवी अन्तल ऋषि की पुत्री थी। तालमदेव की पुत्री चतरंगा देवी का विवाह सुरसैन वंशी मथुरा के शासक के साथ हुग्रा था। तालमदेव के पुत्र बतीहोत्र थे। बतीहोत्र के पुत्र सहदेव थे। सहदेव के पुत्र परुरीख थे। परुरीख के तीन पुत्र : मुकनदेव, देवापी ग्रौर तालनदेव थे। इनमें से तालनदेव कीचानगरी बैठे और उनकी पुत्री का विवाह विराटनगर (ग्राधुनिक बैरठ, जिला जयपुर, राजस्थान) के शासक से हुआ। तालनदेव ग्रौर देवापी के वंश का अन्त

महाभारत युद्ध में हुग्रा। राजा मुकनदेव के वंशज, राजा बालन देव ने बादली ग्राबाद करी और मुकाम खटकानगरी और बादली दोनों स्थानों पर रहते हुए शासन कार्य किया। कालान्तर में इसी वंश में राजा तिसमान हुए, जिनके पौत्र धज रोड़ कुमार के रुप में प्रसिद्ध हुए। उनका नाम सोरठ-हरण तथा रोड़ी शंकर की स्थापना करने के साथ-साथ, इनके समय में रोड़ जाति में करेपा प्रथा ग्रारम्भ होने के कारण प्रसिद्ध है। रोड़ी शंकर पंजाब 'देश' में सिंध की धरती में है। इस शहर से जितने भी लोग निकले हैं, वे सभी रोड़े कहलाते हैं, जिनमें ब्राह्मण तथा खतरी भी शामिल हैं। रोड़ तो इस शहर के मालिक ही थे, क्योंकि उनके शासक ने ग्रपनी जाति के नाम पर इस रोड़वाल शहर का नाम रोड़ी शंकर रखा था। ब्रह्मण तथा खतरी, हमारे रोड़ों में शामिल होना चाहते थे, जमीन लेने तथा बेटी व्यवहार के लिए। परन्तु इनका हमारा मेल नहीं खाता क्योंकि हमारे पूर्वज तो क्षत्रिय-वंशी थे। इसी लिए उन्होंने इनको शामिल नहीं किया।

'धज'– रोड़ कुमार के छः पुत्र हुए : कुनक, तछक, रघु, प्रश्नजीत, शरणजीत तथा कर्धमन। इनमें से तछक लखनऊ चला गया जहां इसके वंशज दुकानदारी करने लगे ग्रौर खतरीग्रों में मिल गए। रघु पूना-सितारा की तरफ चला गया, जिसके विषय में बाद की कोई सूचना हमें मालूम नहीं। प्रश्न जीत ने जोग धारण कर लिया। कर्धमन के वंशजों के गौरखपुर-गौन्डा जिलों में 84 गांव हैं।

कुनक/कुणक बादली में रहे। इनके वंश में आगे चलकर राजा ददरोड़ हुए, जिनकी रानी केलावती महोत्तम ब्राह्मण की पुत्री थी। इनके नौ पुत्र हुए : ग्रालसी, थर्राज, खान, बालणसी, चांद, हट्टू, शाम, कल्याण ग्रौर मान।

कल्याण की ग्रौलाद 'देश' बुन्देल खण्ड में चली गई। ग्रसली रोड़ राजपूत पैंट शिमला, बक्शिया नगरका इत्यादि गांवों में झांसी जिला में आबाद हैं। हट्टू की ग्रौलाद सिरकीबन्द सपेलों में मिल गई। शेष सात भाइयों की ग्रौलाद महले रोड़ इस धरती में बादली में रहे।

इनके खानदान में एक राजा महलसी हुए जिनके नाम पर ये महला रोड़ कहलाये। इस महलसी ने लखनऊ की तरफ उर्पल में राज किया। उसने पृथ्वीराज महोबे वाले के बेटे ग्रापस में चुगली खाकर मार दिये। इन सात भाईयों के खानदान के साथ में गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक के साथ 'डोलों' के प्रश्न पर झगड़ा हुग्रा। इनकी सहायता करने कच्छवाहा राजा मलयसी के 31 राजपूत गढ़ ग्रामेर से चलकर ग्राए। जब ये बादशाही दल के ग्रागे हार गये तो 84 व्यक्ति भागकर कुरुक्षेत्र भूमि में ग्राये। वे 84 स्थानों पर बसे। ग्राज कल उनके 322 गांव ग्रौर 126 गोत्र हैं। ये गोत्र ग्रपने बड़ों के नाम तथा व्योंग से बने हैं।

छः

परिशिष्ट

रोड़ गोत्र एवं गांव

रोड़ जाति के उद्भव की भांति उनके विभिन्न गोत्रों की उत्पत्ति का प्रश्न भी गम्भीर समस्या प्रस्तुत करता है। उनके गोत्र सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रियों से मिलते हैं। उनमें से कुछ जाटों और राजपूतों के गोत्रों से मिलते हैं और अनेक गोत्रों का निकास इस जाति के किसी पुरुष या गोत्र के संस्थापक के निवास स्थान के नाम पर हुआ है। नए गोत्रों की उत्पत्ति का क्रम अबाध रुप से जारी है, जहां सहस्त्रों वर्ष पहले एक गोत्र था, वहीं आज दर्जनों गोत्र बन गए हैं। उदाहरणतः कुछ सौ वर्ष पहले नडायण, भाकला और राणा नामक रोड़ों का एक ही गोत्र था। इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक गोत्र के आरम्भ होने के पीछे एक लम्बा इतिहास जुड़ा हुआ है, जिसकी स्वतन्त्र रुप से पूरी छानबीन किये बिना निश्चित रुप से कुछ कहना उपयुक्त नहीं होगा।

निम्नांकित पृष्ठों में विभिन्न रोड़ गोत्रों एवं इनके गांव की सूचि प्रस्तुत है। गोत्रों के क्रम निर्धारण में उनके जातिगत स्थान या महत्व का किसी प्रकार से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

गोलहण

पुण्डरी, ललायण, सुलतानपुर, घथेड़ा, डाबरथला, भैणी, मुस्तापुर, तिगरी, डीग तथा घेरडू।

छड़कान

झाना-माजरा तथा ढ़ाठरथ।

समघाण

चूहड़ माजरा, सालवन, जाम्बा, शिमला-मौलाना, छोटी भैणी तथा खानपुर।

खोखरा

भादड़, नली, दिवालहेड़ी, बेलड़ा, झंझाड़ी, खालदपुर तथा डालूवाला।

जूड

मुन्दड़ी, पाई, कलहेड़ी, बेलड़ा तथा पिचौलिया।

मोमण

कुंजपुरा तथा नागल।

कादियाण

लुहारी, कुतुबगढ़, झाना माजरा, नर्कातारी, दूधली, न्योवला, जयाणी, शाहपुर, मंजूरा तथा कतलाहेड़ी।

टुरण

खिजड़ाना, पोपड़ा, गांगटेहड़ी, कौल खेड़ा, झिवरी खेड़ा (जौली), अहलन, वड़चल, सिरसल, बसताड़ा तथा बाम्बरहेड़ी।

झोझरू

ओसरी, ऐबुल-ऐबली तथा खासपुर।

भकुरू, बोड़, कुकांण, मोकला, दावदाल, मोटा बराणा, लुहारी, झानों माजरा, बाम्बरहेड़ी, शामगढ़ बहलोलपुर तथा कुंजपुरा।

रुहल्याण

बड़थल, डोड कारसा, बुच्ची, सुभरी तथा फतूपुर ।

कांगर

खनोदा, संगरोली, मोहना, बाकिपुर, करनाल, हसनपुर तथा दिवाल हेड़ी ।

चोपड़ा

खण्डरा, बेलड़ा, डाकवाला, रुकनपुर, सुलतानपुर, नर्कातारी तथा मीरपुर ।

खरंगड़

कारसा, खेड़ी, पुण्डरी, कुतुबगढ़, कुटेल, खरकाली, गिनाणा, ट्योंठा, शेखपुरा, अलुपुर, रिंडल, फूंसगढ़, शाहपुर, हरिपुर, मिर्जापुर, करनाल, रावली तथा सोहनपुर ।

बाल्याण

बेलड़ा ।

बालदा

ढ़ाठरथ, भोजपुर, बेलड़ा, कुराना, पाबला, बराणा, गिनाणा, सांच, हाबड़ी तथा बाम्बरहेड़ी ।

घूंघाण

उजारा ।

चूचाण

मुन्दड़ी ।

गोरा

मुन्दड़ी तथा सिरसी ।

कांयरा

गोरगढ़, कोयर, तथा साकरा ।

दूदयाण

दादूपुर, पुण्डरी तथा खालदपुर ।

ठरड़क

बन्दराणा, खानपुर, गनियाणा, भरटौली, मंजूरा तथा रावली ।

घीयड़

घेरा, कलसी, मानसापुर, बेलड़ा—बेलड़ी, रहमतपुर, रावली, डालूवाला, बजीदपुर, पंडोली, रांघड़वाला, दरियापुर, भौरी तथा भोजपुर ।

लहरवाल

कमालपुर, अरजाहेड़ी, शामगढ़, जगाधरी, रांघड़वाला तथा बड़सालू ।

कन्याण

मथाना, सांवत, बहलोलपुर, ट्योंठा, जाम्बा, जयाणी, कुंजपुरा तथा खेड़ी रामनगर ।

ढ़ाकला

सटौण्डी ।

ढांकर

कंमला ।

कन्धोल

बाल रांगड़ान, अलुपुर, खलीला, गढ़ी, खुखराना, खेड़ी, उपलाणी, कुटेल, खरकाली, हरिसिंहपुर तथा संगरोली ।

खसबर

शामगढ़, संढ़ीर, छोटी दादूपुर, तरावड़ी, ट्योंठा, मोहना, कमालपुर, अलुपुर, ऊंटला, अहर तथा ऐंचरा ।

ढांढण/डांडण

ट्योंठा, सटौण्डी, मुन्दड़ी तथा संगरोली ।

मोला

उमरी, जिरबड़ी तथा मथाना।

सिरधा

धथेड़ा, कुन्जपुरा, करनाल तथा भाणा।

बैनीवाल

खानपुर तथा जलालाबाद।

संगवाल, लाठर, मनियाल, लोड़कान

कौल, गोसगढ़, भिंवरहेड़ी, लुहारी, सुताना, शेखपुरा, सटौण्डी, शामगढ़, भौरी, बेलड़ी, रांघडवाला, पंडोली, लाखनौर, भोजपुर, भैंसराऊ, पड़वाल, नंगला-रोड़ान, मानुवास तथा बेलड़ा।

कायंसा

शाहपुर, बुखापरी तथा मथाना।

मलगस

सांवत तथा चोचड़ा।

सिगारिया

ग्रहर, कमालपुर तथा बजीदा।

टाया

साव रा, रसीना, ग्रहमदपुर, नाम्बरहेड़ी, थराणा, साकरा खेड़ी, गुधा, आलमपुर तथा रावली।

गुच्छले

भोजपुर, पांडोखेड़ी, चौरा, कुतुबगढ़, सोहलपुर तथा मानुवास।

दाबड़ा

ग्रांहू, सांच, गढ़ीं, करनाल, दरड़, शेखपुरा, बरास, काला-माजरा, बेरी खेड़ी, थानेश्वर, ललाण तथा तरावड़ी।

दंदाल

बसतली, सोलू माजरा, ऐबल तथा सांवत।

साथ ही, शायद कुछ रोड़ गोत्रो के नाम इस सूची में शामिल न किए जा सके हों, इस कमी को दूर करने के लिये वांच्छित सूचना सहर्ष स्वीकार की जाएगी और आगामी संस्करण में सम्मिलित कर दी जाएगी।

महला

मोहाना, गन्देवड़ा, डलावली, जडोला, नैण, उपलाणी, संगरोली, मैंहमदपुर, बड़सालु, भैणी कलां, कुछपुरा, जेंदपुरा, खानपुर, मिर्जापुर, लोहारी, तिहाड़, रोड़ माजरा, आंहू, सांच, दिवालहेड़ी सिद्धपुरा, रांघड़वाला, पांडों खेड़ी, बेलड़ा, अहमदपुर, ग्याना-माजरा, रावली, गुढ़ा तथा कारखाना।

खिची

ग्रहर, शे रा, बजीदा, मुनरहेड़ी, बराणी, ब्राह्मण-माजरा, शामगढ़, खलीला, बेलड़ा-बेलड़ी तथा बलड़ी।

जोगराण/जगलान

कुराना, टाण्डा, सांभली, लुहारी तथा हसनपुर।

कल्याणिया

कालखा, कुटेल, मैंहमदपुर, बुच्ची, शेखपुरा, भादड़, दिवालहेड़ी, सिद्धपुरा, बकड़ोली तथा बहलोलपुर।

थोल्ला

झाना माजरा, बेलड़ा, भोजपुर, रहमतपुर, बाल-रांगड़ान, करनाल तथा सोहलपुर।

घड़ताण

बसताड़ा, ऊंटला, अलूपुर, लाखनौर, चौरा, फतेहपुर, खेड़ी मटरवा तथा बेलड़ा।

कलतंगड़िया/कलतंगड़ा

कालरम, बन्दराणा, जुण्डला, शाहपुर, सांच, राजौंद, पाण्डोखेड़ी, कुटेल, करनाल तथा जैंदपुरा।

भूकना

कतलाहेड़ी, मणक माजरा, बजीदा, पबनावा तथा फतेहपुर।

तुर्का

सनहेड़ी, शाखपुर, सलारपुर तथा शामगढ़।

नोसराण

भरटोली, कुराना।

जांडसलार

सीकरी, डाचर, हथलाणा, काछवा, दादूपुर, नंगला तथा सिद्धपुर।

भूराण

सवाणी।

धन्याण

अन्जनथली, उजारा, प्योंत तथा खण्डरा।

मछराण

दादूपुर, गन्याणा, कुछपुरा, निसंग तथा मंजूरा।

हुरड़ा

निसंग, भरटौली, कुआंर खेड़ी, बसताड़ा, कुआ खेड़ा, मिर्जापुर, मकड़ोली तथा करनाल।

सुरहा

कुराना तथा फरीदपुर।

रोजड़ा

जयाणी, लुहारी, राहड़ा, नंगला, कुन्जपुरा, नानूखेड़ी, सटौण्डी तथा नागल।

गराक

मथाना, गुलरपुर, राहड़ा, बाकल तथा बलड़ी।

भाकला

ऐबल तथा ऐबली।

भाकला, नूडायण, राणा

झांझाड़ी, बडेड़ा, करनाल, भैसरांव तथा बेलड़ा।

बोदला

पबनावा, सलोणी (बीर माजरा) तथा रसोला।

टामक

पबनावा, सुखराना, बलाणा, सुताना तथा नैण।

रायतांण

मथाना, अहमदपुर, खानपुर, बसताड़ा, सिद्धपुरा तथा बजीदपुर।

सांडयाण

सांभली, पलवल तथा खासपुर।

बताण

लाखनौर, घथेड़ा, बरसाना, बताणखेड़ी तथा खेड़ी रामनगर।

चुलहाण

कैथल, कलायत, राजोंद, बाहरी तथा बघाना।

दोपला/चौहान

अमीन, बीड़-अमीन, रायपुर रोड़ान, बरागी, सुलतानपुर, चन्द्रभानपुर, मथाना, निडाणा तथा शाहपुर।

मोरथी, मालसरी खेड़ा तथा कारखाना।

ममैन

रसूलपुर तथा पुण्डरी।

छांछरा, ठोला, सुरा, फतियारे, शिशलाण, जोटले खिदड़ाना तथा डा बाला।

इसके अतिरिक्त कुड़लाण/दुहल्याण/मोटकला/बोगी/

हुक्के/बलियाणिये/कुडलन और जूणा नामक आठ गोत्रों के एक ही कुल से उत्पन्न होने का विवरण भाटों ने किया है. परन्तु उनके गांवों के नाम अनुपलब्ध हैं। इसी प्रकार गोरखपुर गोण्डा तथा झांसी जिलों में भी रोड़ पाए जाते हैं। जिनके विषय में खोज करके पुस्तक के अगले संस्करण में पूरा वर्तान्त दिया जाएगा। इसमें 'रोड़-बिरादरी' के घरेलु, सामाजिक और आर्थिक जीवन के इतिहास का विशद् वृतान्त भी सम्मिलित करने की हम योजना बना रहे हैं। तत्सम्बद्ध सूचना, जिस किसी के पास उपलब्ध हो हमें भेजने का कष्ट करें। इस बारे में हम पहले भी राष्ट्रीय समाचार पत्रों के माध्यम से प्रार्थना कर चुके हैं, हम बड़े आभारी हैं कि Indian Express Chandigarh, (dated 19.3.1987) तथा The Hindustan Times New Delhi, (dated 31.3.1987) ने क्रमश: 'Data Needed' तथा 'Rod Rulers' नामक शीर्षकों के अन्तर्गत Letters Columns में प्रकाशित किये हैं। लेकिन, अभी तक हमारे इन प्रयासों का वांच्छित फल नहीं मिल पाया है। निस्सन्देह रुप में कहा जा सकता है कि रोड़ इतिहास की क्रमबद्ध रचना अधिकाधिक लोगों के रचनात्मक सहयोग पर निभर करती है। आशा है, सज्जन् जन आवश्यक सूचना जुटाने में पूर्ण सहयोग कर इस प्रयास को शक्ति एवं गति प्रदान करेंगे।